वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656
9 772582 065005

विवेक ज्योति

वर्ष ५८ अंक ९
सितम्बर २०२०

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

सितम्बर २०२०

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५८
अंक ९

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. स्वामी विवेकानन्द स्तुति: ३८९
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) ३८९
३. सम्पादकीय : सत्कीर्ति, सद्गति और ईश्वर की प्रसन्नता का सुगम पथ – जन-सेवा ३९०
४. रामकृष्ण संघ में दुर्गापूजा (स्वामी तन्निष्ठानन्द) ३९२
५. प्रश्नोपनिषद् (४) (श्रीशंकराचार्य) ३९७
६. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (९/४) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ३९८
७. (भजन एवं कविता) तुलसी की कथा भगवन्त की है (श्रीमैथिलीशरण भाईजी), प्रेम की महिमा (मोहन उपाध्याय), संसार बदल जायेगा (विजय कुमार श्रीवास्तव) ४०१
८. (बच्चों का आँगन) सारागढ़ी का ऐतिहासिक युद्ध (ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य) ४०२
९. गीतातत्त्व-चिन्तन – ९ (नवम अध्याय) (स्वामी आत्मानन्द) ४०३
१०. उपवास का दर्शन (स्वामी अलोकानन्द) ४०६
११. सारगाछी की स्मृतियाँ (९५) (स्वामी सुहितानन्द) ४११
१२. (युवा प्रांगण) संघर्ष से बनता है सफलता का इतिहास (स्वामी ओजोमयानन्द) ४१३
१३. शान्त और सुखी रहने का सरल मार्ग (स्वामी सत्यरूपानन्द) ४१६
१४. आध्यात्मिक जिज्ञासा (५७) (स्वामी भूतेशानन्द) ४१७
१५. (भजन) जय गणेश गणनायक स्वामी (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ४१८

ISSN 2582-0656

१६. श्रीभगवान की सेवा-लीला
(डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ४१९
१७. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३३)
(स्वामी अखण्डानन्द) ४२२
१८. हमारा पौराणिक साहित्य
(डॉ. सुरेशचन्द्र शर्मा) ४२४
१९. साधुओं के पावन प्रसंग (२१)
(स्वामी चेतनानन्द) ४२७
२०. (प्रेरक लघुकथा) इस जगत में श्रेष्ठ है नारी का जननी रूप
(डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) ४२९
२१. समाचार और सूचनाएँ ४३०

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामीजी की यह मूर्ति रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर की है।

सितम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

०५	शिक्षक दिवस
११	स्वामी अभेदानन्द
१७	स्वामी अखण्डानन्द

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान-दाता	दान-राशि
डॉ. द्वारका नाथ, मुंशी कॉलोनी, गोरखपुर (उ.प्र.)	१०००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५७ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६१३.	श्री गणेश शंकर देशपांडे, पद्मनाभपुर, दुर्ग (छ.ग.)	श्रीमती अंजली सप्रे, वैशाली नगर, भिलाई (छ.ग.)
६१४.	,, ,,	श्री अनिल देशपांडे, पंचशील हा.सो., बोरसी, दुर्ग (छ.ग.)
६१५.	,, ,,	श्री संजय गडकरी, MIG-688, पद्मनाभपुर, दुर्ग (छ.ग.)
६१६.	,, ,,	श्री राघव जोशी, रोहणीपुरम्, रायपुर (छ.ग.)
६१७.	,, ,,	तेजस्विनी सेवा प्रतिष्ठान, नेहरू नगर, बिलासपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५८ सितम्बर २०२० अंक ९

स्वामी विवेकानन्द स्तुतिः

यदीयो वेदान्तः प्रथम–नवसिद्धान्तमहिमा
हिमार्तानां दीप्तो रविरिव ददौ शान्तिमसमाम्।
य एकः प्रोद्दीप्तः प्रतिभयजड़ं धर्ममतनोद्
विवेकानन्दोऽसौ जयति यतिवृत्तान्तबिबुधः।।

– जिनके प्रथम और नवीन वेदान्त-सिद्धान्त की महिमा हिमार्त व्यक्तियों के लिये प्रदीप्त सूर्य के समान अतुलनीय शान्तिप्रदायक थी एवं एकमात्र जिन्होंने ज्ञानालोक में प्रदीप्त होकर लोगों की जड़ता दूर करने में समर्थ धर्म-प्रचार किया, उन्हीं ज्ञानी यतिवृन्दों में श्रेष्ठ विवेकानन्द की जय हो।

पवित्रे चारित्रे निरवधिविनीतेन विधिना
सुविज्ञातो लोके विविधविधिमार्गानुपदिशन्।
महामोहध्वान्तं सपदि लयमानीय महसा
विवेकानन्दोऽसौ जयति यतिवृत्तान्तबिबुधः।।

– निरवधि विनीत विधि से पवित्र चरित्र होने से विविध विधि-नियमों का उपदेश देकर जो लोक में सुविदित हुए एवं ब्रह्मतेज से जिन्होंने तत्क्षण लोगों के महामोहान्धकार को दूर किया, उन्हीं ज्ञानी यतिश्रेष्ठ विवेकानन्द की जय हो।

पुरखों की थाती

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा
न श्रूयते हेममयी कुरङ्गी।
तथाऽपि तृष्णा रघुनन्दनस्य
विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।।६९६।।

– न किसी ने सोने का हरिण बनाया था, न पहले कभी किसी ने उसके विषय में सुना या देखा था, तथापि श्रीराम के मन में उसे लाने की इच्छा हुई, इसी से सिद्ध होता है कि विनाश का समय आने पर बुद्धि उलटी चलती है।

न विश्वसेत्कुमित्रे च मित्रे चापि न विश्वसेत्।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्।।६९७।।

– झूठे मित्र पर विश्वास नहीं करना चाहिये और सच्चे मित्र पर भी विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि यदि सच्चा मित्र भी कभी नाराज हो गया, तो वह हमारी सारी गोपनीय बातों को प्रकट कर देगा।

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः।
व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम्।।६९८।।

– इस संसार में, भला कौन-सा ऐसा व्यक्ति है, जिसके कुल में दोष नहीं होता? ऐसा कौन-सा व्यक्ति है, जो रोग से पीड़ित नहीं होता? ऐसा कौन-सा व्यक्ति है, जिसके जीवन में विपत्ति नहीं आती और ऐसा कौन-सा व्यक्ति है, जिसके जीवन में निरन्तर सुख बना रहे?

सत्कीर्ति, सद्गति और ईश्वर की प्रसन्नता का सुगम पथ – जन-सेवा

ईश्वर संसार के समस्त प्राणियों के सुहृद हैं। उनके पालक-पोषक हैं। उन्हीं की प्रेरणा से ब्रह्माजी सृष्टि और विष्णु भगवान पोषण करते हैं। जगत के माता-पिता, बन्धु, सखा, सुहृदय परिजन ईश्वर हैं। भवबन्धनोच्छेदन हेतु ऐसे सर्वजीवसुहृद परमात्मा की प्रसन्नता के लिए शास्त्रों में विभिन्न पथों का निदर्शन किया गया है, विविध तपों का उल्लेख है, बहु व्रतादि क्रिया-कर्म, उपासनाओं का वर्णन है, जिसकी विशद व्याख्या यहाँ अपेक्षित नहीं है, किन्तु अवतारोद्घोषित, शास्त्रानुमोदित, युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द द्वारा विश्व-प्रसारित एक सुगम पथ है, वह है – सेवा। कैसे सेवा करना? व्यष्टि-सेवा, समष्टि-सेवा। व्यक्तिगत रूप से सेवा करना, सामूहिक रूप से सेवा करना। किसकी सेवा करना? सबकी सेवा करना। यथासम्भव, यथाशक्ति, यथोचित सेवा करना। प्राण-धारणार्थ जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, वृक्ष-लतादि की सेवा करना। सर्वोपरि मानव की सेवा करना। सीमित से लेकर असीमित रूप में सेवा करना। जैसे – परिवार में दादा-दादी, माता-पिता, भाई-बन्धु, संतान, पति-पत्नी, परिजनों की सेवा करना। परिवार की शृंखला से आगे बढ़कर आस-पड़ोस के लोगों की सेवा करना। समाज की छोटी ईकाई परिवार से आरम्भ कर राज्य, देश और सबसे बड़ी ईकाई विश्व की सेवा करना। सेवा नागरिक, सामाजिक और मानवीय कर्तव्य तो है ही, आध्यात्मिक उत्कर्ष का भी बहुत बड़ा साधन है।

जन-सेवा केवल मानवीय कर्तव्य ही नहीं, यह केवल कर्तव्य-भावना से किया गया कर्म ही नहीं, लोक में पद-प्रतिष्ठा-अर्जन का साधन ही नहीं, यह ईश्वरप्राप्त्यर्थ मानव द्वारा की गई उत्कृष्ट उपासना है। जीव-सेवा से व्यक्ति सब कुछ प्राप्त कर सकता है, यथा – पुण्य, यश, पद-प्रतिष्ठा, सम्मान, जो सामान्य मानव के लिये तात्कालिक आकर्षण के बिन्दु होते हैं, धर्मपरायण लोग परलोक में सद्गति और पुण्यार्जन हेतु दान-सेवा करते हैं, लेकिन जीव-सेवा से व्यक्ति जन्मान्तरों से अभिलषित परमात्म-सत्ता की अनुभूति और परम चैतन्य सत्ता से तादात्म्य स्थापित कर सकता है, इस सत्य-बोध से बहुत-से अनभिज्ञ और वंचित हैं।

भगवान की प्रसन्नता हेतु लोग जप-तप, यज्ञादि करते हैं। किन्तु व्यास प्रणीत श्रीमद्भागवत में एक सुगम पथ का निर्देशन हमें प्राप्त होता है, जिससे सत्कीर्ति, सद्गति और भगवतप्रसन्नता एक साथ मिल जाती है, जिसका उल्लेख यहाँ प्रासंगिक प्रतीत होता है।

ब्रह्माजी के पुत्र स्वायम्भुव मनु ने अपनी भार्या शतरूपा के संग हाथ जोड़कर अपने पिताजी ब्रह्माजी से निवेदन किया –

त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद् वृत्तिदः पिता।
अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत्।।
तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु।
यत्कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गतिः।।[१]

– "भगवन्! एकमात्र आप ही समस्त जीवों के जन्मदाता और जीविका प्रदान करनेवाले पिता हैं। तथापि हम आपकी सन्तान ऐसा कौन-सा कर्म करें, जिससे आपकी सेवा बन सके।

"हे पूज्यपाद! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप हमसे हो सकने योग्य किसी ऐसे कार्य के लिये हमें आज्ञा दीजिए, जिससे इस लोक में हमारी सर्वत्र कीर्ति हो और परलोक में सद्गति प्राप्त हो सके।"

इस प्रार्थना में दो चीजें ध्यातव्य हैं – पहला, सामान्यतः सज्जन की यह इच्छा होती है कि वह ऐसा सत्कर्म करे, जिससे इस संसार में उसका यश-विस्तार हो और दूसरा उसके कर्मों से उसे सद्गति मिले, उसके कर्म उसे इससे उच्च स्तर पर ले जाएँ, जहाँ वह अपने जीवन की सार्थकता

का बोध कर सके और उच्च-से-उच्चतर अवस्था की ओर प्रेरित कर सके, उसे परम श्रेष्ठता की ओर अग्रसर कर सके। ब्रह्माजी ने जो मार्ग बताया, वह इन दोनों की पूर्ति करते हुए तीसरे महत्त्वपूर्ण रहस्य का भी उद्घाटन करता है। ब्रह्माजी ने कहा – तात! अवनीश्वर! तुम दोनों का कल्याण हो। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, क्योंकि तुमने निष्कपट भाव से 'मुझे आज्ञा दीजिए' ऐसा कहकर मुझे आत्मसमर्पण किया है।

एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यचितिर्गुरौ।
शक्तत्याप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः।।
स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः।
उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज।।[२]

– "हे वीर! पुत्रों को अपने पिता की इसी रूप में पूजा करनी चाहिए। उन्हें उचित है कि दूसरों के प्रति ईर्ष्या-भाव न रखकर जहाँ तक हो सके, उनकी आज्ञा का सादर सावधानी से पालन करें।

"तुम अपनी भार्या से अपने ही समान गुणी सन्तति उत्पन्न करके धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करो और यज्ञों द्वारा श्रीहरि की आराधना करो।"

जगतस्रष्टा ब्रह्माजी ने अपने प्रिय पुत्र स्वायम्भुव को जो आज्ञा दी, उसका पालन कर कोई भी व्यक्ति जीवन में उत्कृष्टता को प्राप्त कर धन्य हो सकता है। सर्वप्रथम पुत्र आज्ञाकारी हो। किसी से ईर्ष्या-द्वेष न करे और पिता की आज्ञा का पालन आलस, प्रमाद को त्यागकर सावधानी से करे, जैसा नचिकेता और श्रवण कुमार ने किया, गुरु-आज्ञा का पालन आरुणी और सत्यकाम जाबाल ने किया। ब्रह्माजी ने आगे कहा कि अपनी पत्नी से गुणी सन्तान की उत्पत्ति करो और यज्ञों द्वारा भगवान की आराधना करो।

ऐसे आज्ञा-पालन, इस प्रकार के आचरण करने से क्या होगा, इसका परिणाम बताते हुए ब्रह्माजी कहते हैं –

परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप।
भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषिकेशोऽनुतुष्यति।।
येषां न तुष्टो भगवान यज्ञलिङ्गो जनार्दनः।
तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम्।।[३]

– "हे राजन्! प्रजा के पालन से मेरी बड़ी सेवा होगी और तुम्हें प्रजा-पालन करते देखकर भगवान श्रीहरि भी तुमसे प्रसन्न होंगे। जिन पर यज्ञमूर्ति जनार्दन भगवान प्रसन्न नहीं होते, उनका सारा श्रम व्यर्थ ही होता है, क्योंकि वे तो एक प्रकार से अपनी आत्मा का ही निरादर करते हैं।"

जगत पिता ब्रह्माजी ने कहा कि तुम्हारे द्वारा प्रजा की सेवा करने से पहले मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी। अर्थात् स्वयं तुम्हारी सेवा से मैं बहुत प्रसन्न होऊँगा और भगवान भी प्रसन्न होंगे।

प्रजा-सेवा, जन-सेवा ऐसा सत्कर्म है, जिससे माता-पिता, परिवार, समाज सबकी सेवा होती है, सभी सन्तुष्ट होते हैं और इन सबके अतीत जगदीश्वर भगवान भी सन्तुष्ट होते हैं। भगवान प्रसन्न होकर ऐसे सेवक पर अनुग्रह कर उसे सद्गति, सत्कीर्ति, स्वधाम और संसिद्धि प्रदान करते हैं। ऐसी महिमा है सेवा की! इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने जीव-सेवा से शिव की प्रसन्नता का आख्यान किया। युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने अपने शिष्यों को शिवभाव से जीव-सेवा का उपदेश दिया। स्वामी विवेकानन्द के मुखारविन्द से निःसृत काव्य-निर्झरिणी कहती है –

जीवों से प्रेम करता जो जन।
वही कर रहा है ईश्वर-पूजन।

श्रीकृष्ण ने सेवा से ही मुक्ति का द्वार प्रशस्त किया। एकनाथजी ने गधा को गंगा-जल पिलाकर ही रामेश्वर शिव की कृपाप्राप्ति की। व्याध ने माता-पिता की सेवा करके ही भगवत्कृपा प्राप्त की; आदि अनेकों दृष्टान्त हैं।

प्राकृतिक आपदाओं से संकटग्रस्त होने, कोरोना जैसी दुर्निवार रोग से त्रस्त मानवता के समय सरकार, प्रशासन, प्रबुद्ध नागरिकों, व्यष्टि और समष्टि स्तर पर असंख्य जनकल्याणकारी संस्थाएँ अपने देशवासियों की यथाशक्ति विभिन्न प्रकार से सेवा में संलग्न रही, जो परस्पर प्रेम और विराट ईश्वरीय-दिव्य चेतना की तादात्म्याभास मानवीय संवेदना को इंगित करती हैं। ईश्वरीय चेतनाभासयुक्त और ईश-भाव से जीव-सेवा भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड और प्राण है। इसीलिए भारतीय वाङ्मय वेद, पुराण, लोकसंस्कृति की गाथाएँ जीव-सेवा का महिमा-गान करती रहती हैं। इसी परोपकार, सेवा, सद्भावना और पर-संवेदना से मानव सत्कीर्ति, सद्गति, भगवत्प्रसन्नता और दिव्य उत्कर्ष को प्राप्त होता है। ○○○

सन्दर्भ – १. श्रीमद्भागवत ३/१३/७-८, **२.** वही, ३/१३/१०-११, **३.** वही, ३/१३/१२-१३.

रामकृष्ण संघ में दुर्गापूजा

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर

शक्ति की आराधना भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से प्रचलित है। शक्तिस्वरूपिणी माँ दुर्गा मधु-कैटभ आदि दानवों का संहार करने के लिय देवों की आराधना पर समय-समय पर विभिन्न रूपों में प्रकट हुईं। दुर्गाराधना भारत की एक प्रमुख पूजा है। दुर्गापूजा उत्सव विशेषकर बंगाल में बड़े धूम-धाम से मनाई जाती है। दुर्गापूजा बंगाली-हिन्दुओं की एक प्राचीन परम्परा और उनका सबसे बड़ा उत्सव है। पश्चिम बंगाल दुर्गापूजा की जन्मभूमि है। वहीं से यह त्यौहार बाद में भारत के पूर्वी राज्यों जैसे असम, उड़िसा, बिहार में फैलता गया। शारदीय दुर्गापूजा न केवल बंगाल का सबसे बड़ा त्यौहार है, बल्कि यह बंगाल-संस्कृति का वाहक, औद्योगिक निवेश का विशालतम साधन, बंगाल पर्यटन का प्रमुख आकर्षण का केन्द्र, धर्म और संस्कृति का प्रधान अंग है। कालिका पुराण, देवी पुराण, मत्स्य पुराण और बृहन्नन्दिकेश्वर पुराण में दुर्गापूजा का विस्तृत वर्णन है। १५वें शतक में स्मृतिकार रघुनन्दन ने भी 'दुर्गापूजातत्त्व' नामक मौलिक ग्रन्थ में दुर्गापूजा की सम्पूर्ण विधि दी है। १६वें शतक में ताहिरपुर महाराजा कंसनारायण के राजपुरोहित पण्डित रमेश शास्त्री ने जिस पूजा-पद्धति की रचना की, वही आज सर्वत्र प्रचलित है।

पश्चिम बंगाल में दुर्गापूजा का आरम्भ मार्कण्डेय पुराण के अनुसार बंगाल स्थित बोलिपूर (बोलपुर) के राजा सुरथ ने किया था। उन्होंने ही सर्वप्रथम माँ दुर्गा की पूजा की थी। वह वसन्त का समय था। उसे वासन्ती पूजा कहते हैं। बंगाल के पाला राज्य में माँ दुर्गा की महिषासुरमर्दिनी के रूप में पूजा की जाती थी। पाला राज्य में बड़ी संख्या में महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियाँ शास्त्रीय बंगाली शिल्पकला पद्धति के अनुसार बनायी जाती थीं। 'पांडु राजार ढिबी' जो कि बंगाल के प्राचीनतम (ईसापूर्व १२०० से ईसापूर्व ७५० वर्ष पुरातन) सभ्यताओं में एक है, वहाँ माँ दुर्गा की प्राचीन मूर्ति पायी गयी है। पश्चिम बंगाल में जमींदार तथा राजाओं के महलों, परिवारों, पंडालों, शक्तिपीठों तथा देवी के पुरातन मन्दिरों में दुर्गापूजा का उत्सव मनाया जाता है। बंगाल के दुर्गापूजा की यह आधुनिक धूमधाम और आडम्बर राजशाही जिले (अभी बांग्लादेश में) के ताहिरपुर महाराजा कंसनारायण के

समय से शुरू हुआ है। बाद में अंग्रेज व्यापारी बड़े-बडे दुर्गोत्सव का व्यय वहन करते थे।

भारत में शरद ऋतु सबसे अच्छी ऋतु मानी जाती है। इस ऋतु में सूर्य की उष्मा कम और शीतलता बढ़ जाती है। वर्षा ऋतु प्रकृति को जीवन्त बनाती है। सर्वत्र हरे-भरे पेड़, हरित, सफेद और फीकी गुलाबी रंग के घास के कशफुल लहराते हुए दिखायी देते है। नीले आकाश और वायु की गम्भीरता मानो माँ दुर्गा के स्वागत हेतु प्रस्तुत हुई हो। भगवान की देवी के रूप में पूजा न केवल भारत में, अपितु सारे विश्व में प्राचीन काल से होती आयी है। परन्तु केवल भारत में ही देवीपूजा धर्मसम्प्रदाय की सारी सीमाएँ लाँघकर सर्वोपरि जीवन्त धर्म के रूप में उभरकर आयी है। भारत के बंगाल में ही देवीपूजा सर्वोच्च सांस्कृतिक परिष्कृति तथा शास्त्रविधि से उच्चतर अवस्था में पहुँची है। भगवान श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''भगवान की मातृरूप में पूजा शुद्धतम तथा उच्चतम प्रकार की साधना है।'' क्योंकि माँ का प्रेम ही अत्यन्त निस्वार्थ तथा निरुपाधिक प्रकार का मानवीय प्रेम है। देवीपूजा भारत में प्रागैतिहासिक काल से चली आ रही है। इसका प्रचलन हड़प्पा-मोहनजोदड़ो की सभ्यता में दिख पडता है। ऋग्वेद में देवीसूक्त नामक अद्भुत स्तोत्र पाया जाता है, जिसे दुर्गापूजा में गाया जाता है। मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत देवी माहात्म्य अथवा चण्डी में देवीपूजा का स्वतन्त्र सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है। शक्तिपूजा का दूसरा स्तोत्र देवी-भागवत है, जो तन्त्रशास्त्र का एक भाग है। देवीपूजा भारत में सर्वत्र, कन्याकुमारी (देवी कन्याकुमारी मन्दिर) से लेकर कश्मीर (क्षीरभवानी मन्दिर) तक, राजस्थान (अम्बा मन्दिर) से लेकर कोलकाता (कालीघाट मन्दिर) तक प्रचलित है। भारत में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं, जहाँ देवी मन्दिर नहीं है। मर्यादा पुरुषोत्तम राजा श्रीरामचन्द्रजी ने भी रावण-वध के पूर्व दुर्गापूजा की थी। महान मराठा महाराजा छत्रपति शिवाजी देवी भवानी के परम भक्त थे। सिखों के दसवें गुरु श्रीगुरु गोविन्द सिंह जी भी माँ दुर्गा की पूजा किया करते थे।

देवी के विभिन्न रूप : देवी एक होने पर भी विभिन्न स्थानों पर विभिन्न रूपों में प्रकट हुई है। प्राचीन काल में चण्डी स्तोत्र में देवी सिंह पर विराजित चामुण्डेश्वरी व महिषासुरमर्दिनी के सर्वश्रेष्ठ देवी के रूप में चित्रित की गयी हैं। परवर्ती काल में देवी की शिवपत्नी के रूप में पूजा होने लगी। देवी के काली, तारा, त्रिपुरासुन्दरी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी (सरस्वती), कमला (लक्ष्मी) ये दश-महाविद्या के रूप हैं। दुर्गापूजा आश्विन मास के चन्द्रमा की प्रथम तिथि से नौ दिनों तक नवरात्रि उत्सव के रूप में सम्पूर्ण भारत में मनायी

दश-महाविद्या

जाती है। दसवाँ दिन दशहरा का होता है, जिस दिन उत्तर भारत में रामलीला का आयोजन होता है। दशहरा के दिन भारत के अनेक प्रान्तों में शस्त्रपूजन किया जाता है। बंगाल में शस्त्रपूजन विश्वकर्मापूजा में करते हैं।

बंगाल का दुर्गापूजा उत्सव सामाजिक और धार्मिक संस्कृति का एक अनोखा उत्सव है। यह उत्सव महालया से आरम्भ होकर करीब-करीब एक मास तक रहता है। यहाँ देवी की दशभुजाओं में विभिन्न शस्त्रधारी महिषासुरमर्दिनी के रूप की पूजा होती है। बंगाल में शारदोत्सव को ऐसा मनाते हैं, मानो कन्यारूपी देवी सपरिवार तीन दिन के लिए पितृगृह आती है।

प्रारम्भ में बंगाल में शिवजी की पूजा एक किसान-देवता के रूप में होती थी। शिवजी किसान और उनके एक अनुचर भीम थे। दोनों मिलकर खेती करते थे। उनकी गृहिणी शिवानी या दुर्गा हैं, जो हिमालय की लाडली कन्या उमारानी हैं। बड़ा कष्टकर जीवन है। सारे दिन खेत में काम करने के बाद बीच-बीच में शिव का उनके साथ झगड़ा होता है, विशेषकर जब शिव भांग खाकर मत्त हो जाते हैं, तब उमारानी रूठकर क्रोधित हो अपने पिता के पास हिमालय चली जाती हैं। होश में आने पर शिव उमारानी को मनाने के लिए एक बस्ता शंख की चूड़ियाँ ले जाते हैं। बंग साहित्य में ऐसी कहानियाँ मिलती हैं। साहित्य में परवर्तीकाल में शिवजी राजा और उमारानी अन्नपूर्णा के रूप में दिखते हैं।

यह परिवर्तन बड़ा चित्ताकर्षक है। देवी दुर्गा को हम कभी कन्या, कभी पत्नी, कभी शक्तिमयी असुरदलनी मातृरूप में और कभी सर्वेश्वरी-राजरानी माँ अन्नपूर्णा के रूप में देखते हैं। प्रचलित आगमनी भजनों में भी भिखारिणी उमा महारानी की पद-प्राप्ति की सुन्दर छबि देखने को मिलती है। आज के इस चार दिन के विस्तृत दुर्गापूजा के आडम्बर को देखें, तो दुर्गा का राजेन्द्राणी, राजराजेश्वरी रूप की सत्यता का परिचय मिलता है।

दुर्गापूजा है शक्तिपूजा : दुर्गापूजा को महापूजा कहते हैं। मूलत: यह पूजा शक्ति-देवी की आराधना है। चण्डी के अनुसार सब देवताओं के शरीर से नि:सृत अतुलनीय तेजराशि एकत्रित होकर नारी-मूर्ति धारण कर त्रिलोक को परिव्याप्त करती है, वही देवी है। फिर वह नारी का ही रूप क्यों धारण करती है? क्योंकि नारी शक्ति का प्रतीक है। सभी देवताओं की शक्ति इस नारी में प्रकाशित होती है। दुर्गा महाशक्ति और महामाधुर्य का प्रतीक है। महिषासुरमर्दिनी नारी रूप देवताओं की सम्मिलित शक्ति का प्रतीक है। वेदान्त में ब्रह्म और शक्ति, सांख्य में पुरुष और प्रकृति और आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में जड़ और चैतन्य इन सबमें समानता है। तन्त्र में शिव और काली, उसी तत्त्व का आभास है। श्रीरामकृष्ण कहते थे, ब्रह्म और शक्ति अभेद है, एक को मानने से दूसरे को भी मानना पडेगा। जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति। अग्नि को स्वीकार करने से उसकी दाहिका शक्ति को भी मानना पड़ेगा। नारी का मोहिनी रूप, स्त्रीत्व, मातृत्व, ये सब देवात्म-शक्ति का बहिर्प्रकाश है। महापराक्रमी महिषासुर का वध करने हेतु ब्रह्मादि सकल देवताओं की सम्मिलित शक्ति ही महाशक्ति दुर्गा के रूप में प्रकट हुई है। दुर्गा असुर को अपने चरण से मार रही है और मरे हुए असुर को देवी के पदस्पर्श से शिवत्व प्राप्त हुआ अर्थात् उसके देवत्व का विकास हुआ, उसमें शुभ बुद्धि, ज्ञान और चैतन्य का उदय हुआ। इस तत्त्व का वर्णन भक्त रामप्रसाद ने अपनी एक रचना में किया है -

लोग तो मिथ्या कहते हैं, शिव नहीं माँ के पदतल में।
माँ खड़ी दानव के ऊपर दैत्य पड़ा धरणी तल में।।
माँ के चरण-स्पर्श से दानव-तन शिव रूप हुआ रणस्थल में।

इसका तात्पर्य है कि माँ की कृपा हो, तो आसुरी प्रवृत्तिवाले लोग भी शिवत्व प्राप्त कर सकते हैं। देवी और असुर का युद्ध केवल बाहर में ही नहीं, मनुष्य के भीतर भी अविराम चल रहा है। मनुष्य हो या दानव, सबमें ही देवत्व वा शिवत्व सदैव विराजमान है, वह स्वरूपत: शिव ही है। पर उनके भीतर के आसुरी भाव ने शिवत्व को ढँक रखा है। शक्तिरूपिणी माँ की कृपा से भीतर का आसुरी भाव चला जाता है और उसे शिवत्व की प्राप्ति होती है। तन्त्रशास्त्र और पुराण में माँ दुर्गा और काली को आद्याशक्ति का ही दो रूप माना गया है।

शुद्ध मन और देह में निष्ठा भक्ति से मन्त्रोच्चार के साथ विविध उपचारों से देवी की प्रतिमा में देवी की जीवन्त उपस्थिति की भावना से परात्मक ज्ञान से देवी का आवाहन करना, इसे पूजा कहते हैं। पूजा में अनुष्ठित विविध क्रियाकाण्ड के दो रूप हैं – पहला बाह्य और दूसरा आन्तरिक। आन्तरिक रूप में उपासक देवी के सामने सम्पूर्ण आत्मनिवेदन करता है। बाह्य आचार-अनुष्ठान आन्तरिक रूप के ही विविध भावों में वर्णित रूपक मात्र हैं। पूजा का उद्देश्य पूज्य के साथ पूजक का ऐक्य स्थापन करने का प्रयास है। घटस्थापना जिस प्रतिमा में की जाती है, उसका प्राथमिक व आवश्यक अंग है। घट ईश्वर के निराकार स्वरूप का प्रतीक है। जब पूजा प्रतिमा में करना सम्भव न हो, तब घट में पूजा की जा सकती है। श्रीरामकृष्ण कहते थे – अनन्त समुद्र में कहीं भी तट दिखाई नहीं देता, उसके बीच में एक घट है, उसके अन्दर भी जल और बाहर भी। घट के कारण ही तो अन्दर और बाहर ऐसे दो भाग हुए हैं। ज्ञानी देखता है कि अन्दर और बाहर वही परमात्मा है। पर सामान्य मनुष्य के लिए ऐसी धारणा सम्भव नहीं है। इसलिए पूजा, जप-ध्यान और तपस्या की जरूरत होती है। क्षुद्र 'मैं' को बृहत 'मैं' में परिवर्तित करने का यह एक प्रयास है। मृण्मयी प्रतिमा को चिन्मयी करने का प्रयास है।

दुर्गा शब्द का अर्थ : द अर्थात दैत्य नाशक, उकार विघ्ननाशक, रफार (रेफ) रोगनाशक, गकार पापनाशक और अकार भय-शत्रु-नाशक। अर्थात् दैत्य, विघ्न, भय और शत्रु, इन सबसे जो रक्षा करती है, वही है देवी दुर्गा या जिन्होंने दुर्ग नामक असुर का नाश किया, वे ही नित्यदुर्गा नाम से विख्यात हैं। दुर्गा ही समस्त शक्ति की आधार हैं, निखिल देवगणों के शक्तिसमूह की घनीभूत मूर्ति हैं। वे स्नेहमयी, वात्सल्यमयी जननी हैं, इसीलिए उनके नयनों से सतत करुणाधारा वर्षित होती है। युद्ध के समय जब वे अतिभीषणा होती हैं, तब भी उनकी आँखें करुणा से परिपूर्ण होती हैं।

उनके हृदय में मुक्ति प्रदान करनेवाली कृपा और युद्ध में मृत्युप्रद कठोरता, इन दोनों भावों का अद्भुत समन्वय है। दुर्गा वे हैं, जो दुर्गम भवसागर पार कराती हैं।

दुर्गा का परिवार : दुर्गा प्रतिमा के मध्य में माँ दुर्गा, उनकी दाहिनी ओर लक्ष्मी और गणेश, बायीं ओर सरस्वती और कार्तिक, उनका दाहिना पैर सिंह के उपर और दूसरे पैर की बड़ी उंगली महिष असुर के कंधे पर होती है। लक्ष्मी, सरस्वती, कार्तिक और गणेश अपने-अपने वाहनों क्रमश: उल्लू, हंस, मयूर, चूहा के साथ होते हैं।

देवी का वाहन सिंह है, जो कि बहुत ही बलशाली प्राणी है। वह रजोगुण का प्रतीक है। रजोगुण यदि सत्त्वगुण के अनुगत हो, तो उसकी शक्ति फलदायी होती है। असुर से लड़ने के लिए देवी ने रजोगुण रूपी शेर को अपने वशीभूत करके रखा है। ये आसुरी और पाशविक शक्तियों का उच्छेद करती हैं। दुर्गा की पूजा कर हम महाशक्ति प्राप्त करते हैं, पर उसका सदुपयोग सात्त्विक उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य में पशुप्रवृत्ति विद्यमान होती है। जब वह पुरुषार्थ तथा साधनभजन के द्वारा पशुवृत्ति का नाश कर देवभाव जागृत करता है, तब वह शरणागति के योग्य बनता है। देवी की दाहिनी ओर असुर है। देवी और असुर का संग्राम अनवरत चल रहा है। जैसे बाहर, वैसे ही भीतर साधक के जीवन में सदैव चल रहा है। दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता और अज्ञान यही आसुरी सम्पद है। दूसरी ओर निर्भीकता, शुद्ध आचरण, ज्ञान व योगनिष्ठा, दान, बाह्येन्द्रियों का संयम, यज्ञ, वेदपाठ, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोधहीनता, त्याग आदि दैवीसम्पद हैं। साधक के जीवन से अविद्या रूपी असुर का नाश करके विद्यारूपिणी माँ उसके महामुक्ति का मार्ग खोल देती हैं।

लक्ष्मी विकास और अभ्युदय का प्रतीक हैं। उनके आशीर्वाद से धन, ज्ञान और शील का विकास होता है। साधक लक्ष्मी की उपासना मुक्ति-धन प्राप्त करने के लिए करते हैं। लक्ष्मी का एक और अर्थ मंगल भी है। यहाँ श्रीरामकृष्ण की 'माटी और पैसा' की कहानी याद आती है। जब उन्होंने माटी और पैसा दोनों को गंगा में फेंक दिया, तो उन्हें डर लगा कि वैसा करने से लक्ष्मी का त्याग करना तो नहीं हुआ? तब उन्होंने लक्ष्मी को अपने हृदय में मंगल रूप में विराजित किया। लक्ष्मी का वाहन उल्लू है, जो दिन में देख नहीं पाता है। जो तत्त्व को नहीं जानते वे उल्लू के समान होते हैं, सदैव धनधान्यादि पार्थिव वस्तु के पीछे लगे रहते हैं। उल्लू यम का दूत भी होता है। यम है धर्मराज और जो अधर्म से चलेंगे, उन्हें यम का डण्डा पड़ेगा ही। उल्लू की ऊँची ध्वनि मानो संकेतक है – उल्लू रात में जागता है, वह साधक को बताता है कि जब सब सो जाते हैं, तब रात को साधना कर और दिन में निद्रा के अधीन हो जाओ, तभी साधना में सिद्धि प्राप्त होगी। गणेश सिद्धिप्रदायक देवता हैं। गणेश की पूजा से विद्यार्थी को विद्या, धनार्थी को धन, पुत्रार्थी को पुत्र और मोक्षार्थी को मोक्ष की प्राप्ति होती है। गणेश गणदेवता और विघ्नेश भी हैं। गणेश का वाहन मूषक है। प्रबल प्रतिबंधक स्वरूप कर्मफल होने से सिद्धिप्राप्ति नहीं होती। उनकी पूजा से मोक्षार्थी माया-जाल को काटकर अष्टपाश के बन्धन से मुक्त हो मोक्ष प्राप्त करता है। मायाजाल काटने के लिए साधन का प्रतीक मूषक है। सरस्वती विद्यादायिनी हैं और माँ दुर्गा की ज्ञानशक्ति हैं। सरस्वती वाग्देवता हैं। वह शुद्ध ज्ञानमयी प्रकाशस्वरूपा हैं। ज्ञान के साधक को तन-मन-प्राण से शुभ्र अर्थात् पवित्र होना चाहिए। सरस्वती का वाहन हंस है। सरस्वती ब्रह्मविज्ञा है। जो साधक दिन-रात अजपा मन्त्र में सिद्ध है, वह हंसधर्मी होता है। मनुष्य नीरोग शरीर में २४ घण्टों में २१,६०० अजपा मन्त्र का श्वास-प्रश्वास के साथ जप करता है। हंस जल में रहता है, पर उसका शरीर जल से लिप्त नहीं होता। उसी तरह परमहंस संसार में रहते हैं, पर संसार से निर्लिप्त रहते हैं। हंस दूध से जल को पृथक कर केवल दूध ही ग्रहण करता है और हंस की गति एकदम सरल होती है। मनुष्य जब विवेक बुद्धि द्वारा अनित्य संसार से नित्य सारांश ग्रहण करने में सक्षम होता है, तब उसकी गति ईश्वर की ओर होती है, तभी वह ब्रह्मविद्या प्राप्त करता है। कार्तिकेय देव सेनापति हैं और सौंदर्य व शौर्य-वीर्य के प्रतीक हैं। युद्ध में इन दोनों की बहुत आवश्यकता होती है। इसीलिए साधक-जीवन एवं व्यवहारिक-जीवन में कार्तिकेय को प्रसन्न करने से शौर्य-वीर्य की प्राप्ति होती है। वे दयादि अष्टगुणविशिष्ट मयूर के ऊपर विराजमान हैं। उनकी अंगदीप्ति तप्तकांचन के समान और हाथ में शक्ति है। सौंदर्य और वीर्य ये दोनों भाव मयूर में विद्यमान होते हैं। मयूर के समान आलस्यरहित होकर प्रत्येक कार्य में कुशल, नारी-रक्षा में सदैव तत्पर, विष-भक्षक, स्वजन-प्रीतिमान और सौंदर्यशाली होना चाहिए। सर्वांगीण विकास की अधिष्ठात्री

देवी लक्ष्मी, विद्यादायिनी सरस्वती, शौर्य-वीर्य के प्रतीक कार्तिक और सर्वविघ्ननाशकारी सिद्धिदाता गणेश, इन सबसे माँ दुर्गा आवृत रहती हैं। अत: जो दुर्गा को प्रसन्न कर सकेगा, उसे विद्या, यश और श्री, इन सबकी प्राप्ति अवश्य होगी।

मणि (मास्टर महाशय) जब दुर्गापूजा में केशव सेन के घर गये थे, तब उन्होंने उनसे दुर्गापूजा की अच्छी व्याख्या सुनी थी। उसी व्याख्या को २२ अक्तूबर, १८८२ विजया-दशमी के दिन मास्टर महाशय श्रीरामकृष्ण को सुनाते हुए कहते हैं – ''यदि माता दुर्गा को कोई प्राप्त कर सके, यदि माता को कोई हृदय-मन्दिर में ला सके, तो लक्ष्मी, सरस्वती, कार्तिक, गणेश स्वयं आते हैं। लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य, सरस्वती–ज्ञान, कार्तिक–विक्रम, गणेश–सिद्धि, ये सब स्वयं ही मिल जाते हैं, यदि माँ आ जायँ तो।''

महालया : इस दिन देवी-प्रतिमा की आँखें तैयार की (रंगायी) जाती हैं। इसे 'चोक्खू दान' कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि इसी दिन देवी धरती पर आती हैं। प्रतिमा बनाने का कार्य कृष्णजन्माष्टमी, रथयात्रा या उलटा रथयात्रा के दिन शुभारम्भ होता है। प्रतिमा के उपयोग के लिए बास-लकड़े के ढाँचे की पूजा का जाती है, जिसे 'काठामो-पूजा' कहते हैं।

काठामो-पूजा

दुर्गा की प्रतिमा विसर्जित करने के बाद वह बाँस का ढाँचा अगले वर्ष के लिए रख दिया जाता है। कृष्णजन्माष्टमी के दिन भगवान श्रीकृष्ण और महामाया दोनों ने ही एक साथ जन्म लिया था, इसलिए उस दिन से दुर्गा-प्रतिमा बनाना आरम्भ होता है। संन्यासी दुर्गापूजा नहीं कर सकते, अत: ब्रह्मचारी पूजा करते हैं और जो काठामो-पूजा करता है, साधारणत: वही दुर्गापूजा करता है।

रामकृष्ण मठ में दुर्गापूजा विशुद्धसिद्धान्त पंजिका के अनुसार छह दिन होती है, जो पंचमी से आरम्भ और दशमी को विसर्जन कर शान्तिजल के साथ समाप्त होती है।

आगमनी भजन : माँ दुर्गा के अपने मायके पधारने पर उनके स्वागत में भजन गाने की प्रथा है, जिन्हें 'आगमनी भजन' कहा जाता है। उन भजनों में पुत्री के ससुराल से मायके आने पर उसके प्रति प्रेम की झलक देखने को मिलती है।

उन भजनों में विराजित कोमल भावना के कारण स्वामीजी को वे विशेषरूप से प्रिय थे। उन्हें 'गिरी गणेश आमार शुभकारी' जैसे भजन बहुत पसन्द थे। दुर्गापूजा के कुछ दिन पहले से ही बंगाल के आध्यात्मिक लोकगीत गायक, जिन्हें 'बाउल' कहते हैं, वे घर-घर जाकर शिव-पार्वती गाथा से संयुक्त आगमनी भजन लोगों को सुनाते हैं। उमा (पार्वती को उमा, गौरी भी कहा जाता है) जिसका विवाह भिखारी शिवजी से हुआ है। उमा की माँ मैना अपनी बेटी की चिन्ता करती हैं और उसे तीन दिन के लिए मैके बुलाती हैं। उमा का अपने मैके आना दुर्गापूजा के रूप में मनाया जाता है। उमा के मैके आने के उपलक्ष्य में लिखे भजनों को आगमनी भजन कहते हैं। इन भजनों का गायन महालया से आरम्भ होता है। एक बार जयरामवाटी में श्रीमाँ के दरवाजे पर एक बाउल आगमनी भजन गा रहा था। श्रीमाँ दरवाजे के पास बैठकर वह सुन रही थीं। भजन का भावार्थ था – 'हे मेरे पतिदेव गिरि! जाओ मेरी बेटी गौरी को ससुराल से यहाँ ले आओ। मैंने नारदजी से सुना है कि वह 'माँ, माँ' कहकर रो रही है। हमारा दामाद भांग का नशाखोर भिखारी है और हमारी पुत्री गौरी सोने जैसी है। उसके पति ने भांग के लिए अपनी पत्नी के वस्त्र और आभूषण बेच दिये हैं।' ... भजन समाप्त हुआ। सेवक ने उसे चार पैसे देकर बिदा किया। श्रीमाँ निस्तब्ध उसी जगह पर बैठी रहीं। बहुत समय बीत गया। सेवक के बुलाने पर भी वह शान्त बैठी रहीं और थोड़ी देर के बाद बोलीं, 'चलो, लौट चलें, अभी सब कुछ नीरस लगता है।' थोड़ी देर बाद माँ के उस भाव का उपशम हुआ। सम्भवत: उस भजन ने श्रीमाँ को अपने स्वरूप का स्मरण कराया था।

पहले बेलूड़ मठ में साधु-ब्रह्मचारी प्रतिदिन जन्माष्टमी से आगमनी भजन गाते थे, पर परवर्तीकाल में पितृपक्ष के आरम्भ के दिन से गाना प्रारम्भ हुआ। **(क्रमश:)**

प्रश्नोपनिषद् (४)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति।।४।।

अन्वयार्थ – **सः** उन पिपल्लाद ने **तस्मै** उस कबन्धी से **उवाच ह** कहा – **प्रजापतिः (सन्)** हिरण्यगर्भ या सर्वात्मा होकर, **प्रजाकामो** प्रजा को सृष्टि करने की इच्छा से **सः वै** उन्होंने ही **तपः** तप या ज्ञान की **अतप्यत** चर्चा की थी; **सः** उन्होंने **तपः तप्त्वा** तपस्या या ज्ञान-चर्चा करके, **रयिं** धन या अन्न-स्थानीय सोम **च** तथा **प्राणं** प्राण या भोक्ता-स्थानीय अग्नि को (और) **इति** इस **मिथुनम्** जोड़े को **सः** उन्होंने **उत्पादयते** उत्पन्न किया – **इति** (ऐसा सोचकर कि) **एतौ** ये **मे** मेरे **बहुधा** अनेक प्रकार के **प्रजाः** सन्तान **करिष्यतः** उत्पन्न करेंगे।

भावार्थ – पिपल्लाद ने कबन्धी से कहा – हिरण्यगर्भ या सर्वात्मा होकर, प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा से उन्होंने ही तपस्या ज्ञान चर्चा की थी; उन्होंने तपस्या या ज्ञान-चर्चा करके धन या अन्न-स्थानीय सोम तथा प्राण या भोक्ता-स्थानीय अग्नि को (और) इस जोड़े को उन्होंने उत्पन्न किया – (ऐसा सोचकर कि) ये मेरे अनेक प्रकार के सन्तान उत्पन्न करेंगे।

भाष्य – तस्मा एवं पृष्टवते स ह उवाच तद्-अपाकरणाय आह। प्रजाकाम: प्रजा आत्मन: सिसृक्षु: वै प्रजापति: सर्वात्मा सन् जगत्-स्रक्ष्यामि इति एवं विज्ञानवान्-यथोक्तकारी तद्-भाव-भावित: कल्प-आदौ निर्वृत्तो हिरण्यगर्भ: सृज्यमानानां प्रजानां स्थावर-जङ्गमानां पति: सन्-जन्मान्तर-भावितं ज्ञानं श्रुति-प्रकाशितार्थ-विषयं तप: अन्वालोचयत्-अतप्यत।

भाष्यार्थ – ऐसा पूछनेवाले उन (कबन्धी) का समाधान करने हेतु, उनके प्रति उन (पिप्पलाद) ने कहा – अपनी सन्तानों का सृजन करने की इच्छा से ही, प्रजापति ने – सोचा कि मैं सर्व-स्वरूप होकर जगत् की सृष्टि करूँगा – जैसा कहा है, वैसा ही करनेवाले, उसी भावना में तन्मय होकर, (उनके द्वारा) कल्प के आरम्भ में, (वे) हिरण्यगर्भ के रूप में, उत्पन्न किये जानेवाले स्थावर-जंगम (चर तथा अचर) प्राणियों के स्वामी बने। हिरण्यगर्भ होकर उन्होंने अपने पिछले जन्म में प्राप्त हुए वेदों का अर्थ प्रकट करनेवाले ज्ञान पर विचार-रूपी तपस्या की।

भाष्य – अथ तु स एवं तपस्तप्त्वा श्रौतं ज्ञानम् अन्वालोच्य सृष्टि-साधनभूतं मिथुनम् उत्पादयते मिथुनं द्वन्द्वम् उत्पादितवान्। रयिं च सोमम् अन्नं प्राणं च अग्निम् अत्तारम्। एतौ अग्नीषोमौ अतृ-अन्नभूतौ मे मम बहुधा अनेकधा प्रजा: करिष्यत इति एवं संचिन्त्य अण्ड-उत्पत्ति-क्रमेण सूर्याचन्द्रमसौ अकल्पयत्।।

भाष्यार्थ – इसके बाद उन्होंने उपरोक्त प्रकार से तपस्या करके अपने मन में उस वैदिक ज्ञान को जाग्रत किया और सृष्टि के मूल साधन के रूप में एक जोड़े को उत्पन्न किया। रयि या चन्द्रमा रूपी अन्न और प्राण या अग्नि (सूर्य) रूपी भोक्ता को (उत्पन्न किया)। (इसलिए कि) ये अग्नि तथा सोम (चन्द्र) – भोक्ता एवं अन्न के रूप में मेरे लिए नाना प्रकार के प्राणियों को उत्पन्न करेंगे। ऐसा सोचकर उन्होंने (वेदों में वर्णित) अण्ड- उत्पत्ति के क्रम से (अपने संकल्प द्वारा) सूर्य और चन्द्रमा की सृष्टि की ।।४।।

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः।।५।।

अन्वयार्थ – **आदित्यो** सूर्य **ह वै** ही **प्राणः** प्राण (और) **रयिः** अन्न **एव** ही **चन्द्रमा** सोम या चन्द्रमा है; **एतत्**

शेष भाग पृष्ठ ४१० पर

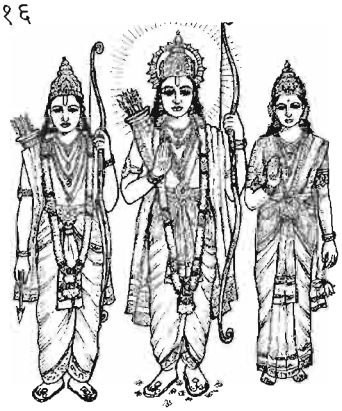

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (९/४)

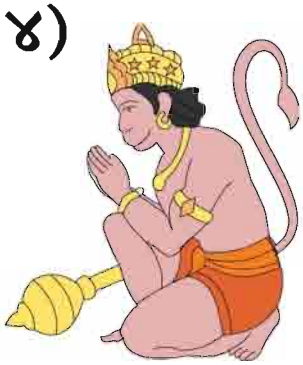

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

जब कोई अभ्यास पड़ जाय, आदत पड़ जाय, तो छूटना सहज है क्या? वह व्यंग्यात्मक गाथा आपने सुनी होगी, मुझे तो ठीक-ठीक याद नहीं रहता। एक तो थोड़े से ही कुछ किस्से याद हैं, वे भी पुराने दुहराए हुए रहते हैं और वे भी पूरी तरह याद नहीं रहते। कहा जाता है कि कहीं लीला में रावण का अभिनय करने वाला पात्र बीमार पड़ गया। उसके स्थान पर एक अन्य पात्र को रावण का पाठ देकर मंच पर बैठा दिया गया। उसे कह दिया गया कि जब अंगद आकर पूछेगा, तो तुम्हें यही कहना है कि मैं लंकेश रावण हूँ। पर जब मंच पर गरजकर अंगदजी ने पूछा कि तुम कौन हो? तो उसने तुरन्त कहा कि मैं तो घसीटे हलवाई हूँ। इसका अभिप्राय है कि उसे भले ही मंच पर बैठा दिया गया और कह दिया गया कि तुम लंकेश रावण हो, पर वह जीवनभर अपने को घसीटे हलवाई ही समझते रहा, बेचारे को इतना अभ्यास पड़ गया था कि वही उसने दुहरा दिया। यहाँ बेचारे जीव की भी **जनम जनम अभ्यास निरत चित** की ही स्थिति है, उसे इतना लम्बा, अनगिनत जन्मों का अभ्यास पड़ा हुआ है कि कितना भी पाठ पढ़ाइये कि **जीव ब्रह्मैव नापरः**, तुम्हारा सहज स्वरूप यह है, पूछने पर वह दुहरा तो देगा, पर वही स्थिति है – **बँध्यो कीर मरकट की नाईं।**

श्रीरामचरितमानस में 'चिज्जड़ग्रन्थि' का उल्लेख करते हुए कहा गया –

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी।।
सो मायाबस भयउ गोसाईं।
बँध्यो कीर मरकट की नाईं।। ७/११६/२

जीव तोते और बंदर की तरह बँध गया। दो दृष्टान्त देने का तात्पर्य यह है कि बन्दर मानो अविवेकी है और तोता लगता है कि कितना बुद्धिमान है! उसे आप कोई भी पाठ पढ़ा देंगे, तो वह उसको दुहरा देगा। तोते का यह स्वभाव है कि उसे मिर्च और कुछ वस्तुओं से प्रेम है। उसको पकड़नेवाला वस्तुओं को रख देता है और ऊपर एक रस्सी में पोली नली रहती है। स्वाभाविक ही तोता उस पर बैठता है और उलट जाता है। वह पोली नली को पकड़े हुए ही यह समझता है कि मुझे किसी ने पकड़ लिया है और बहेलिया उसे पकड़ लेता है। तोता उन पंडितों की तरह है, जो शास्त्रों के वाक्यों को दुहराने में बहुत बुद्धिमान हैं, लेकिन वस्तुतः उनकी स्थिति वैसे ही है। कहा जाता है कि एक महात्मा को तोते पर दया आ गई। उन्होंने उसको पाठ पढ़ा दिया – देखो मिर्चे का लोभ मत करना, पोली पर मत बैठना और यदि उस पर बैठ भी जाओ, तो उसको छोड़कर उड़ जाना। पर वह महात्मा यह देखकर चकित हो गये कि उस बहेलिये ने जब मिर्च को जमीन पर डाला, तो तोता आया, पोली नली पर बैठा, उलट गया, और पाठ पढ़ते जा रहा था, मिर्चे का लोभ मत करना, पोली पर मत बैठना, बैठ भी गये तो छोड़कर उड़ जाना। महात्मा ने सिर पीट लिया कि पोली को छोड़कर उड़ तो नहीं रहा है और पाठ को दुहराए जा रहा है। मानो व्यंग्य किया गया कि व्यक्ति वाक्य तो दुहरा देते हैं, पर वैसा व्यवहार में नहीं लाते। शंकराचार्य का वाक्य है –

कलौ वेदान्तिनः सर्वे फाल्गुने बालका इव।

जैसे फाल्गुन के महीने में बालक गाली-गलौज करते हैं, उसका अर्थ-वर्थ तो उनको ज्ञात नहीं होता, केवल दुहरा देते हैं। इसी प्रकार कोई उच्च कोटि के वेदान्त के ज्ञान के स्वरूप की बात कर भी दे, तो जन्म-जन्मान्तर का अभ्यास छूटना कोई सरल है क्या? विभीषण के सामने भी तो वही संकट था। विभीषण श्रीराम के शिविर में रोके क्यों गये? बन्दरों

ने जब पूछा कि आप कौन हैं? आपका परिचय? तो वही अभ्यास वाली बात हुई। वे भूल गये कि हनुमानजी क्या पाठ-पढ़ाकर आए थे। हनुमानजी ने कहा था –

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। ५/७/४

मैं तुम्हारा वास्तविक भाई हूँ। क्योंकि तुम्हारी माता और मेरी माता हम दोनों की माता एक श्रीसीताजी ही हैं। रावण तुम्हारा नकली भाई है। इसे वे भूल गये। जब बन्दरों ने पूछा कि तुम्हारा परिचय क्या है और अगर उन्होंने कहा होता कि मैं हनुमानजी का छोटा भाई हूँ, तब तो तुरन्त भीतर बुला लिये जाते। पर अभ्यास तो वही पड़ा हुआ था, वे यही बोले कि मैं रावण का भाई हूँ। इसीलिए तो बन्दरों ने सुग्रीव से वह परिचय दिया और वही परिचय सुग्रीव ने भगवान को दिया कि रावण का भाई आया हुआ है –

आवा मिलन दसानन भाई। ५/४२/४

वह जो दैन्य की वृत्ति है, उसका छूटना इतना कठिन है कि व्यक्ति छोड़ नहीं पाता। ऐसी स्थिति में भक्तों ने कहा – भई, जो स्वरूप का पता लगा सके, स्वरूप से एकत्व का अनुभव कर सके और जिसमें सामर्थ्य है, वह सामर्थ्य ठीक-ठीक सदुपयोग करते हुए धर्म का पालन करे। कर्मी ने संविधान का पता लगाया और ज्ञानी ने स्वरूप का पता लगाया, तो भक्तों ने कहा कि पता लगाओ कि ईश्वर का स्वभाव कैसा है? बड़ी मीठी बात है! स्वभाव का लाभ वही लेना चाहता है, जिसको लगता है कि हमारा कार्य विधान के अनुकूल नहीं है। विधान के अनुकूल है, तब तो आप सीधे अपना कार्य करने के लिये भेज देंगे। शरणागति का जो मूल आधार है, वह है भगवान का स्वभाव। स्वरूप जो है, वह ठीक है। कहा गया –

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर। २/१२६/०

कर्म-सिद्धान्त तो इतना जटिल है कि क्या कोई व्यक्ति संसार में ऐसा कर्म कर सकता है, जिसमें कोई दोष न हो, कोई पाप न हो? फिर कर्म-सिद्धान्त की सबसे बड़ी जटिलता यह है कि वहाँ पर हिसाब-किताब में समायोजन नहीं होता। ऐसा नहीं होता कि हमने पाँच पाप किये और दस पुण्य किये, तो पाँच पाप पाँच पुण्य से कट जाय और बाकी पाँच पुण्य का फल हमें मिले। कर्मशास्त्र का यह नियम है कि पाँच पाप किया, तो उसका फल अलग भोगिए और दस पुण्य किए, तो उसका फल अलग भोगिए। यह बही-खाता तो बड़ा लम्बा हो गया। कोई कर्म ऐसा हो नहीं सकता, जिसमें पाप-पुण्य का मिश्रण न हो। पुण्य है तो स्वर्ग जाइए, पाप है तो नरक में जाइए। यह चक्र चलता ही रहता है।

इसलिए शरणागति का अभिप्राय है – जहाँ पर व्यक्ति को ऐसा लगने लगे कि हम थके हुए हैं, हम असमर्थ हैं, हम चाहकर भी न तो पूरी तरह से बुराइयों का परित्याग कर पाते हैं और न ही हम चाहकर अपने स्वरूप में ब्रह्म से एकत्व का अनुभव भी कर पाते हैं। वहाँ पर विभीषण के उस चिन्तन का मूल रहस्य है, शरणागति का जो मूल आधार है, वह आधार यही है – एक ओर उन छह व्यक्तियों का स्मरण होता है कि मैं उन चरणों का दर्शन करूँगा, जिसके स्पर्श से अहल्या तर गई। उसके पश्चात् दूसरे पात्र का स्मरण होता है, वह है दण्डक वन।

आपने कल यदि ध्यान से सुना हो, अहल्या बुद्धि है। इसका अभिप्राय है कि बुद्धि को चाहे जितनी त्याग-तपस्या की महिमा बताई जाय और भले ही हम व्यवहार में चेष्टा करें, लेकिन कोई-न-कोई ऐसा भोग के आकर्षण का क्षण आता है, जब बुद्धि तप को भूलकर भोग को स्वीकार कर लेती है। अहल्या ने जानकर किया कि अनजान में किया, वैसे उसने कहा कि उसने अनजान में किया, पर कहीं-न-कहीं, तो उसने विवेक को किसी अँधेरे कोने में रख दिया। गौतम मूर्तिमान धर्म हैं, अहल्या बुद्धि है। वह बुद्धि धर्म का अनुगमन करती रही, पर जब क्षणिक भोग का समय आया, तो उसने भ्रमित होकर यह मान लिया कि पति की आज्ञा का पालन करना धर्म है और पतिदेव ऐसी आज्ञा दे रहे हैं, तो उसका पालन करना चाहिए। यह मानो आज्ञापालन रूप धर्म और उसके साथ जब इन्द्र को ही गौतम मान लेने की बाध्यता जीवन में आती है, तो स्पष्ट हो जाता है कि बड़ा से बड़ा बुद्धिमान ऐसी भूल दुहराता है।

रामचरितमानस में बताया गया है कि बुद्धि इतनी उच्चकोटि की वस्तु है, पर भ्रमित होती है, लुब्ध होती है। किन्तु सन्त विश्वामित्र भगवान राम को बिना भक्ति, बिना शरणागति के भी वहाँ लेकर आते हैं, भ्रमित बुद्धि को सुधारने का एक मात्र उपाय यही है। भगवान राम ने जब अपनी चरण-धूलि का स्पर्श कराया, तो चरण-धूलि का स्पर्श होते ही, उस समय गोस्वामीजी ने कहा – **प्रगट भई तपपुंज सही।**

देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।
१/२१०/२

वह तपपुंज प्रगट हो गई और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी। कैसे? 'अति प्रेम अधीरा'। प्रेम में अधीर होकर।

यहाँ संकेत क्या है? अभी तक वह बुद्धि थी और उसने धर्म की सेवा की, पर अब क्या परिवर्तन आया? 'अति प्रेम अधीरा' स्थिति हो गई। प्रेम में और धर्म में अन्तर क्या है? धर्म बुद्धि के द्वारा किया जाता है। मन में कोई बात आती है और धर्म का आचरण हम बुद्धि के द्वारा करते हैं। प्रेम में प्रयत्न करके नहीं किया जाता। धर्म को छोड़ने के लिए कहा जाए, तो बुद्धि से किसी तरह हम उसे छोड़ भी दें, पर प्रेम में वैसा नहीं होता। स्वभाव में परिवर्तन आ गया। कैसे? बुद्धि जब उस प्रेमरस से ओतप्रोत होती है, भगवान की चरण-धूलि से जब वह धन्य होती है, चेतना का संचार होता है, तब उसकी यह अवस्था हो जाती है –

अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई।

२/२१०/३ और ६

उन्होंने एक और वाक्य कह दिया –

राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई।

२/२१०/८

अहल्या ने शरणागति की बात कही और उसके साथ भगवान राम के लिये विशेषण दिया – **रावन रिपु जन सुखदाई**। अहल्या ने कहा, हे रावण-रिपु प्रभु! आप भक्तों को सुख देने वाले हैं।

राम नरेश त्रिपाठी एक बड़े साहित्यकार हुए हैं। तुलसीदासजी पर उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। एक बार उन्होंने लिखा कि गोस्वामीजी कहीं-कहीं भूल कर बैठे हैं, जैसे, अहल्या स्तुति कर रही है, उस समय अहल्या के मुख से 'रावन रिपु जन सुखदाई' कहलाना, यह असंगत है। अभी तो भगवान राम से रावण का कोई विरोध भी नहीं हुआ है। भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ, किशोरावस्था में वे महर्षि विश्वामित्र के साथ यहाँ आए हुए हैं, तो इस समय उन्हें रावणरिपु कहना, यह तो शब्द का सही चुनाव नहीं है। दशरथनन्दन कह दें, कौशल्यानन्दन कह दें, विश्वामित्रप्रिय कह दें, किन्तु रावणरिपु कहना असंगत है। पर मैं समझता हूँ कि कभी-कभी जो लोग भौतिक धरातल पर सोचते हैं, वे इसका रहस्य नहीं समझ पाते। 'रावन रिपु जन सुखदाई' कहकर मानो यह बताना था कि यह वही अहल्या है, जिसके सामने इन्द्र गौतम का रूप बनाकर आया और वह उसे नहीं पहचान पाई। उसी अहल्या की दृष्टि आज इतनी पवित्र हो गई है कि जो भविष्य में होनेवाला है, 'रावण रिपु जन', वह भी उसे दिखाई देने लगा। यह दिखाना चाहते हैं कि वस्तुत: उसमें इतनी पवित्रता आ गई कि भविष्य में जो रामायण में घटित होनेवाला है, वह भी उसे दिखाई दे रहा है।

उसमें बड़े सुन्दर सूत्र हैं। वहाँ पर अहल्या ने जो बात कही कि जो वस्तु साधना से मिलेगी, वह जितनी साधना होगी, उतनी मिलेगी। वह स्वर्ग में भी नियम है कि आपके पुण्य जितने हैं, आपको भोग उतने मिलेंगे। पर कृपा से जो वस्तु मिलेगी, वह तो देनेवाले की क्षमता से मिलेगी, लेनेवाले की योग्यता से थोड़े ही मिलेगी। इसलिए भगवान जब कृपा करते हैं, किसी नियम-सिद्धान्त से बँधे नहीं होते कि किस पर कितनी कृपा करें। वे बाध्य नहीं हैं कि किस पर कृपा करें और किस पर कृपा न करें। मैंने पहले ही कहा कि कृपा-सिद्धान्त का अगर कोई दुरुपयोग करता है, तो अपनी ही हानि करता है। पर यह निश्चित रूप से भगवान की कृपा के साथ नियम हो ही नहीं सकता। यही अहल्या ने भगवान से कहा, महाराज –

मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई।

२/२१०/७

मैं अपवित्र नारी हूँ और हे प्रभु! आप जगत को पवित्र करनेवाले हैं, जगत को सुख देनेवाले हैं, मैं आपकी शरण में हूँ। **(क्रमश:)**

प्रश्न – मन को कैसे स्थिर किया जाय?

स्वामी ब्रह्मानन्द – प्रतिदिन ध्यान करना चाहिए। ध्यान करने का बहुत सुन्दर समय है सुबह। ध्यान से पहले थोड़ा शास्त्रपाठ करने से मन सहज ही एकाग्र हो जाता है। ध्यान के बाद कम से कम आधा घण्टा चुपचाप बैठना आवश्यक है, क्योंकि ध्यान करने के समय उसका फल नहीं भी हो सकता है; वह कुछ बाद में भी हो सकता है। इसलिए ध्यान के तुरन्त बाद मन को किसी सांसारिक अथवा व्यर्थ के विषय में नहीं लगाना चाहिए। उससे बहुत हानि होती है।

प्रश्न – जप क्या जोर से करना होगा या मन ही मन?

स्वामी ब्रह्मानन्द – जब अकेले में निर्जन स्थान में जप करो, तब तुम स्वयं अपने कान से सुन सको, इस तरह करना। और यदि अन्य लोग समीप हों, तो मन ही मन करना।

तुलसी की कथा भगवन्त की है

श्रीमैथिलीशरण भाईजी

तुलसी की कथा तुलसी की जथा,
को बता ही सका वो अनन्त ही है,
जो अनन्त अनन्त की राम कथा,
सब सन्तन के भगवन्त की है ।
नित केलि भुशुण्डि के साथ करें,
सिय हेरि धरें सिय राम लला को,
सिय की पिय की सबके हिय की
तुलसी की कथा भगवन्त की है ।।

प्रेम की महिमा

मोहन उपाध्याय

प्रेम की महिमा अपरंपार, प्रेम है जीवन का सत्कार ।
प्रेम है जीवन-रस का स्वाद, प्रेम बिना सूना संसार ।।
प्रेम है जीवन में अनमोल, कौन कर सके इसका मोल?
हृदय में भर देता आनन्द प्रेम का एक मधुर ही बोल ।।
गगन में रवि-शशि गतिमान, धरा को करते ज्योति प्रदान।
दूरियाँ आ जाती हैं पास ज्वार सागर में भरे उफान ।।
नदी वन पर्वत हैं साकार, प्रकृति मानो नित करे पुकार।
भरा है इनमें जो सौन्दर्य प्रकृति का वह दुर्लभ शृंगार ।।
करे पशु-पक्षी सदा विहार, नभ में, वन में उन्हें निहार ।
हृदय में स्वयं उमड़ता प्रेम रंगीला है कितना संसार।।
धरा पर सब मानव हैं एक, सृष्टि की सब संतान नेक
हमारा घर सारा संसार, एक हम, चाहे दिखें अनेक।
ध्यान-मनन-चिन्तन में प्रभु के मिलता ब्रह्मानन्द।।
प्रेम-पूर्वक मिलो-जुलो और मुस्काओ मन्द-मन्द।
न कुछ लेना न कुछ देना, मस्त-मगन-आनन्द।।
सबका भला करो जग में और हरिभजन सानन्द।
प्रेम प्रभु का नाम है प्यारा, ओम आनन्दम् आनन्द।।

संसार बदल जायेगा

विजय कुमार श्रीवास्तव

प्राण जब छूटेंगे, संसार बदल जायेगा ।
इष्ट-मित्र स्वजनों का व्यौहार बदल जायेगा ।।
रूप बदल जायेगा रंग बदल जायेगा,
मृत्यु को समर्पित हर अंग बदल जायेगा ।
अपने ही बाँधेंगे जलाकर कर देंगे राख,
रिश्तों के साँचों का आधार बदल जायेगा।। प्राण ...
यद्यपि विलाप सांकेतिक करेंगे लोग,
फिर भी गिनेंगे माल कितना कौन पायेगा।
पत्नी के रिश्तों का प्यार बदल जायेगा,
यारी हो कितनी हर यार बदल जायेगा ।। प्राण ...
जीवन के बन्धनों से मुक्ति मिल जायेगी,
वासना-व्यथा से विराम मिल जायेगा।
श्वासों के स्वप्न सब टूटकर बिखरते ही,
अपनों के रिश्तों का जाल टूट जायेगा।। प्राण ...
आज के जीवन में रोग और मृत्यु-भय
प्राण छूटते ही भय-लोप हो जायेगा।
राग-द्वेष-लोभ-दम्भ भागेंगे भूत बन,
एक और शान्ति का संसार बन जायेगा।। प्राण ...
ज्ञान की गठरिया हो जायेगी तार-तार
अपनी कमायी का ठौर बदल जायेगा।
वेदना, कराह, मन्त्रणा भी रहेगी नहीं,
दिव्य लोक से महाकाल जब बुलायेगा।। प्राण ...
आज अहंकार में बोलते हैं बड़े बोल,
बोल बन्द होते ही मोल चला जायेगा।
आँखों के आगे छा जायेगा अन्धकार,
अपना सभी कुछ पराया बन जायेगा।। प्राण ...
व्यर्थ में ही जीवन गँवाना तो ठीक नहीं,
दिया धरा नाम छोड़ यहीं रह जायेगा।
प्राणों के कर्ज, ना चूको, निभाओ फर्ज,
नहीं तो यह जीवन कलंक बन जायेगा ।। प्राण ...

सादे काँच पर फोटो नहीं उतरती, परन्तु काँच पर रसायन लगा होने पर फोटो खींची जा सकती है। इसी तरह, हृदय में भक्तिरसायन लगा हो, तभी उस पर ईश्वरीय तत्त्वों की छाप पड़ सकती है । — **श्रीरामकृष्णदेव**

२०

सारागढ़ी का ऐतिहासिक युद्ध

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

यह युद्ध १२ सितम्बर, १८९७ में ब्रिटिश भारतीय सेना तथा अफगान पश्तूनों के बीच ब्रिटिश भारत (वर्तमान खैबर पखतून्खवा, पाकिस्तान) के उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रान्त में स्थित सारागढ़ी नामक किले पर लड़ा गया था। उस समय अफगानिस्तान के गुलिस्तान और लॉकहार्ट नामक दो किले ब्रिटिश नियन्त्रण में थे। इन दोनों किलों का निर्माण महाराजा रणजीत सिंह ने करवाया था। सारागढ़ी इन दोनों किलों के बीच में स्थित है। २१ अप्रैल, १८९४ में ब्रिटिश भारतीय सेना ने इन दोनों किलों के बीच सन्देशों को प्रसारित करने के लिए हेलियोग्राफिक सिग्नल स्टेशन के रूप में सारागढ़ी चौकी का निर्माण किया। इस चौकी की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश भारतीय सेना ने ३६ सिक्ख बटालियन के २१ सैनिकों को तैनात किया था।

१२ सितम्बर, १८९७ को सुबह ८ बजे सारागढ़ी किले के संतरी ने अन्दर खबर दी कि १००००-१२००० अफगान पश्तून (अफ्रिदी या ओराक्जई) उत्तर की ओर से सारागढ़ी किले की ओर बढ़ रहें हैं। संतरी को अन्दर बुलाकर हवलदार ईशर सिंह ने आदेश दिया कि फॉर्ट लाकहार्ट में तैनात अधिकारियों को यहाँ की स्थिति से अवगत कराया जाए और पूछा जाए कि हमें आगे क्या करने का आदेश है? एक घण्टे के अन्दर अफगान पश्तूनों (अफ्रिदी या ओराक्जई) ने गुल बादशाह के नेतृत्व में सारागढ़ी पोस्ट पर धावा बोल दिया और तीन तरफ से किले को घेर लिया। उनमें से एक सैनिक सफेद झण्डा लेकर किले की ओर बढ़ा और उसने जोर से कहा, ''हमारी तुम लोगों से कोई लड़ाई नहीं है, हमारी लड़ाई ब्रिटिशों से है। तुम्हारी सेना संख्या में कम है, मारे जाओगे, अत: हथियार डाल दो।'' ब्रिटिश सेना के मेजर जेम्स लंट के अनुसार ईशर सिंह ने अफगानों से कहा, ''ये अंग्रेजों की नहीं, महाराणा रणजीत सिंह की जमीन है। हम अन्तिम साँस तक किले की रक्षा करेंगे।'' इसके साथ ही सारागढ़ी का किला 'जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' के नारे से गूँज उठा।

सिग्नल इन्चार्ज सिपाही सरदार गुरमुख सिंह ने ब्रिटिश सेना के कर्नल हाव्टन को हेलियोग्राफ से हमले की सूचना दी, लेकिन वे सेना नहीं भेज पाए। उन्होंने सेना को पीछे हटने का आदेश दिया। हवलदार ईशर सिंह के नेतृत्व में भारतीय सैनिकों ने पीछे हटने से इनकार किया और गुरु ग्रन्थ साहिब जी की उपस्थिति में अरदास कर दुश्मनों का मुकाबला करने के लिए हथियार उठा कर अपना-अपना मोर्चा सम्भाला। अफगानी हमलावरों ने भारतीय सैनिकों को आत्मसमर्पण के लिए उकसाया, लेकिन वे उनके आगे झुके नहीं। हवलदार ईशर सिंह ने सैनिकों को पीछे हटने का आदेश दिया, ताकि युद्ध को जारी रखा जा सके, लेकिन भगवान सिंह मुख्य द्वार पर अफगानियों को रोक रहे थे और उनसे लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। अफगान पश्तूनों ने दो बार किले की दीवार को तोड़ने का प्रयास किया, परन्तु वे विफल हुए। बाद में दीवार टूट गई और भारतीय सैनिकों ने निडरतापूर्वक अफगानों के साथ आमने-सामने भयंकर युद्ध किया। अन्तिम सिक्ख रक्षक सिपाही गुरमुख सिंह ने हेलियोग्राफ सिग्नल स्टेशन को छोड़ दिया और युद्ध में कूद पड़े। जब उनके पास गोलियाँ समाप्त हो गईं, तो उन्होंने चाकू से अकेले ही २० अफगानों को मार गिराया। वे अन्तिम क्षणों तक 'जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' बोलते रहें। यह युद्ध ७ घण्टों तक चला। ब्रिटिश सेना आने तक सारागढ़ी चौकी खण्डहर हो चुकी थी और वहाँ १८० से ज्यादा अफगानों की लाशों का ढेर था और ६०० से अधिक घायल हुए थे। दो दिन बाद ब्रिटिश सेना ने किले पर पुन: कब्जा कर लिया।

इतिहास के पन्नों में ऐसा भयंकर युद्ध कभी नहीं हुआ, इस युद्ध में २१ बहादुर सिक्ख सैनिक १०००० अफगानों के आगे झुके नहीं, भागे नहीं, बल्कि अन्तिम साँसों तक बहादुरी से लड़ते रहे। उनकी इस बहादुरी के लिए ब्रिटेन की संसद में सलामी दी गई। इन सभी वीरों को मरणोपरान्त परमवीर चक्र के बराबर का सम्मान, 'इंडियन ऑर्डर आफ मेरिट' दिया गया। हमें इन वीरों की शहादत से, उनके साहस एवं पराक्रम से प्रेरणा लेकर, दृढ़ निष्ठा के साथ एवं स्वार्थहीन होकर राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन (९)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

अवतार के दिव्यत्व को भक्त ही पहचान सकता है

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।११।।

मम (मेरे) परम् (परम) भावम् (भाव को) अजानन्त: (न जानने वाले) मूढ़ा: (मूढ़ लोग) मानुषीम् (मनुष्य का) तनुम् (रूप) आश्रितम् (धारण किए) माम् (मुझको) भूतमहेश्वरम् (भूतपति) अवजानन्ति (जानते हैं)।

मेरे परम भाव को न जाननेवाले मूढ़लोग मुझे मनुष्यरूपधारी भूतपति जानते हैं।

ये मूढ़ लोग हैं, वे मुझे देख नहीं पाते। वे केवल मेरे शरीर को देखते हैं। वे मानते हैं कि मैं मात्र एक शरीरधारी हूँ। अर्जुन! महेश्वर का वह मेरा स्वरूप उनकी दृष्टि में नहीं भासता है। क्यों नहीं भासता? इसका कारण है – **अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्** – ये मूढ़ लोग हैं, वे देखते हैं कि मैं केवल तनुधारी हूँ। मनुष्य का रूप धारण किये हुए हैं। परन्तु वे मेरे परं भाव को नहीं जानते। **मम भूतमहेश्वरम्** – मैं भूतों का महेश्वर हूँ, यह बात उनके मन में आती नहीं है। यह उनके हृदय में प्रतिभासित होती नहीं। अब यह प्रश्न हो सकता है कि क्यों प्रतिभासित नहीं होती? आप कहते हैं कि साक्षात् वही ईश्वर मनुष्य रूप में आए हैं। तब भी बहुत-से लोग आपको पहचान नहीं पाते हैं। कृष्ण को भला कितने लोगों ने पहचाना? हम तो देखते हैं बहुत ही कम लोगों ने उन्हें जाना था। उन्हें पहले जाननेवाले एकमात्र भीष्म पितामह ही थे। भगवान कृष्ण ने अपने स्वरूप को भीष्म पितामह के प्रति किसी प्रकार प्रकट नहीं किया था। किन्तु उन्होंने पहचाना था। व्रज की गोपियों ने पहचाना था। तभी तो हम रास पंचाध्यायी में पढ़ते हैं, जब उस रासलीला के बीच से प्रभु अन्तर्हित हो जाते हैं, तो गोपियाँ रुदन करते-करते कहती हैं –

न खलु गोपिकानन्दनो भवा–
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले।।

(श्रीमद्भागवत, गोपिकागीत, १०.३१.४)

– "कन्हैया! तुम क्या समझते हो कि हम तुम्हें नन्दनन्दन मानती हैं? हम तुम्हें गोपबालक नहीं मानतीं। तुम अखिल देहधारियों के हृदय में विद्यमान उनके साक्षी हो, अन्तरात्मा हो। साक्षात् ब्रह्माजी की प्रार्थना से विश्व की रक्षा के लिये, धरा का भार हरने के लिए तुमने सात्वत कुल में, यदुवंश में अवतार लिया है, यह हम जानती हैं।" गोपियाँ जानती थीं, कुछ लोग जानते थे। अन्य लोग क्या जानते थे? इसीलिए प्रभु यहाँ कहते हैं – **परं भावमजानन्तो** - अर्थात् मेरे भाव को वे नहीं जानते।

श्रीरामकृष्ण ने भी इस बात का परिचय दिया था। वेदान्त अवतारवाद में विश्वास नहीं करता। भक्तिशास्त्र करता है। नरेन्द्रनाथ को जो बाद में स्वामी विवेकानन्द बने, उन्हें श्रीरामकृष्ण के अन्तिम दिनों में संशय हुआ। काशीपुर का उद्यानभवन, जहाँ पर अब मन्दिर है, वहीं श्रीरामकृष्ण थे। १५ अगस्त, १८८६ की मध्य रात्रि के दिन श्रीरामकृष्ण

ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की, वे महासमाधि में चले गये। उसके दो-तीन दिन पहले १३ अगस्त के रात की बात है। उनके गले में कैंसर हो गया था। पीड़ा से कराह रहे थे। उनका कष्ट देखा नहीं जाता है। श्रीरामकृष्ण छटपटा रहे हैं। नरेन्द्रनाथ और अन्य भक्तगण सब बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण के दु:ख को देखकर सभी अत्यन्त दु:खित हैं। अचानक नरेन्द्रनाथ के मन में एक प्रश्न जागता है। यही वह व्यक्ति है, जो कराह रहा है। यही है, जो कहता था – जो राम, जो कृष्ण वही इस समय एक आधार में रामकृष्ण हुआ है। सामान्य मनुष्य की तरह पीड़ा से कराहनेवाला, क्या यह कभी राम और कृष्ण हो सकता है? उनके मन में बहुत बड़ा प्रश्न उठा। क्योंकि श्रीरामकृष्ण ने कई बार अपने जीवन में कहा था, 'जो राम, जो कृष्ण, वही इस समय रामकृष्ण।' नरेन्द्र के मन में यह संशय हुआ कि पीड़ा के इन क्षणों में यह व्यक्ति फिर एक बार दुहरा दे, तब मैं मानूँगा। मन के किसी कोने में संशय उठा ही था कि श्रीरामकृष्ण अपनी समूची शक्ति एकत्र करते हैं। वे बोल ही नहीं पाते थे। बोलते थे तो फुसफुसाकर, कुछ समझ ही नहीं आता था। आवाज नहीं निकलती थी। कैंसर इतना बढ़ा हुआ था। संकेत से बातें करते थे। कई दिनों से उनकी आवाज ही सुनाई नहीं देती थी। पर आज जब नरेन्द्र के मन में संशय उठा, तो श्रीरामकृष्ण अपनी पूरी शक्ति एकत्र कर आँखें तरेरकर नरेन्द्र की ओर देखते हुए कहते हैं, अरे! अभी भी अविश्वास, अभी भी अविश्वास! मैं फिर से कहता हूँ, जो राम, जो कृष्ण, वे ही इस बार रामकृष्ण हुए हैं। पर तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं। प्रत्यक्ष! प्रत्यक्ष! प्रत्यक्ष! यह विलक्षणता है। श्रीरामकृष्ण ने कहा कि वेदान्त की दृष्टि से नहीं। क्योंकि वेदान्त अवतरण स्वीकार नहीं करता। श्रीरामकृष्ण यह बात जोड़ना भूलते नहीं हैं। पीड़ा के उन क्षणों में उनकी बात सारे कमरे में गूँज जाती है। हर व्यक्ति ने उनकी बातों को सुना। सब नरेन्द्र की ओर देखते हैं। मानो प्रश्न कर रहे हैं कि क्या हो रहा है? क्या कह रहे हैं? नरेन्द्र उठकर बाहर चले आए और फिर रोने लगे। उन्होंने रोते हुए गुरुभाइयों से कहा – तुम लोग तो जानते ही हो कि मेरा मन बड़ा संशयी है। किसी बात पर विश्वास नहीं करता है। आज उनके कष्ट को देखकर मेरे मन में यह संशय उठा कि यही व्यक्ति है, जो कहता है कि जो राम, जो कृष्ण, वही इस बार रामकृष्ण होकर आया है। मन में यह भाव उठा कि यदि एक बार इन क्षणों में इसी बात को वे दुहरा दें, तब मैं मानूँगा। तुमलोगों ने देख ही लिया कि कैसे उन्होंने मेरे मन को भाँप लिया। मेरे मन में ये विचार उठने की देर थी नहीं कि उनका उत्तर निकला। पर श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि वेदान्त की दृष्टि से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष। वेदान्त सभी को ईश्वर का अवतार मानता है। वेदान्त की दृष्टि से आप-हम सभी ईश्वर हैं। इसीलिए श्रीरामकृष्ण वह कहना नहीं भूलते कि तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं, अपितु प्रत्यक्ष।

एक ये मूढ़ लोग हैं, वे मुझे देख नहीं पाते। वे केवल मेरे शरीर को देखते हैं। वे मानते हैं कि मैं मात्र शरीरधारी हूँ। अर्जुन, महेश्वर का वह मेरा स्वरूप उनकी दृष्टि में नहीं भासता है। क्यों नहीं भासता? इसका कारण बताते हुए भगवान बारहवें श्लोक में कहते हैं –

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।

राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।।१२।।

मोघाशा (व्यर्थ आशा) मोघकर्माण: (व्यर्थ कर्म) मोघज्ञाना (व्यर्थ ज्ञानवाले) विचेतस: (अज्ञजन) राक्षसीम् आसुरीम् च मोहिनीम् (राक्षसी, आसुरी और मोहिनी) प्रकृतिम् (प्रकृति को) एव (ही) श्रिता: (धारण किए रहते हैं)।

वे व्यर्थ आशा, कर्म तथा ज्ञानवाले अज्ञजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृति को ही धारण किए रहते हैं।

वे मुझे समझ नहीं पाते हैं, क्योंकि वे मोघाशा - अर्थात् वे लोग व्यर्थ की आशाएँ पालते हैं। ऐसा व्यक्ति ईश्वरत्व को क्या समझ सकता है? किसी व्यक्ति में यदि ईश्वर हों, तो क्या यह मोघाशा व्यक्ति उसके ईश्वरत्व को समझ सकेगा? श्रीरामकृष्ण के जीवनकाल में कितने लोग थे, जो उन्हें ईश्वर के रूप में जान सके थे? बहुत ही कम लोग थे। कृष्ण के जीवन काल में कितने लोग थे, जिन्होंने उन्हें ईश्वर के रूप में पहचाना था? जब हम महाभारत और रामायण या वाल्मीकि रामायण पढ़ते हैं, तो उसमें पाते हैं कि मुनिगण कहते हैं कि भक्तगण उन्हें अवतार कहते हैं। परन्तु ऋषिगण कहते हैं कि वे तो एकमात्र ब्रह्म को ही मानते हैं। यह ठीक है कि श्रीराम उनकी दृष्टि में एक महच्चरित हो सकते हैं। पर वे उन्हें ईश्वर के अवतार नहीं मानते। क्यों? क्योंकि ज्ञान की परम्परा में ईश्वर का अवतरण नहीं है। पर यहाँ पर यह प्रकरण भिन्न है। वे तो ज्ञानी थे, ऋषि थे, उन्होंने भिन्न

दृष्टि से श्रीराम को देखा। पर यहाँ पर जो अर्जुन के मन का प्रश्न है कि आपको देखकर आपके ईश्वरत्व को क्यों नहीं पहचान पाता है? वह भक्ति कहाँ है, वह भावना कहाँ है, जो ईश्वरत्व को उसके समक्ष प्रकट करे। क्यों नहीं है? लोग मोघकर्माण: – गलत कर्मों में लिप्त हैं। मोघज्ञाना – तर्क-वितर्क करते हैं। ऐसे तर्क-वितर्क जिनका कोई लक्ष्य ही नहीं है। विचेतस: – चित्त खिन्न है, क्षिप्त है, इधर-उधर बिखरा पड़ा हुआ है। ये लोग राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृति के वश में हुए हैं। ये तीन प्रकार की प्रकृतियाँ हैं। क्या अर्थ है इसका? राक्षसी प्रकृति, आसुरी प्रकृति और मोहिनी प्रकृति किसको कहेंगे? मोहिनी प्रकृति का मतलब है जब हम मोह के कारण, प्रमाद के कारण, किसी का अनिष्ट कर बैठते हैं। इसको एक उदाहरण द्वारा हम कहेंगे। मान लीजिए एक शराबी है। शराब के नशे में वह अपने ही परिजन का घात कर बैठता है। इसको हम कहेंगे कि मोह के वश में होकर। वह समझ नहीं पाता है कि वह क्या कर रहा है। ऐसा अनिष्ट जब कोई करता है, तब कहेंगे कि वह मोहिनी प्रकृति के वश हो गया है। आसुरी प्रकृति क्या है? आसुरी प्रकृति वह है, जहाँ मैं अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की हानि जान-बूझकर करता हूँ। राक्षसी प्रकृति क्या है? जब कोई दूसरों को तंग करने के लिए तंग करे। उसको ऐसा करने में ही आनन्द आता है। उससे मेरा कोई स्वार्थ नहीं सधता है। परन्तु दूसरों को दु:ख में देखकर ही मुझे अच्छा लगता है। यहाँ पर यह कहा गया है कि ईश्वर जब अवतरण करता है, रूप लेकर आता है, तब मनुष्य समझ क्यों नहीं पाता है। उसके कारणों की चर्चा हमने ऊपर की है। जब उसके जीवन से यह सब दूर होगा, तभी मेरा ईश्वरत्व प्रतिभासित होगा। वह समझ लेगा कि ईश्वर हैं। श्रीरामकृष्ण के जीवन में भी हम इसी तथ्य को पाते हैं। उस वक्त श्रीरामकृष्ण भावावस्था में रहा करते थे। मन्दिर आदि सब व्यवस्था का भार रानी रासमणि के जामाता मथुरानाथ विश्वास के हाथों में था। वे श्रीरामकृष्ण को बाबा कहकर पुकारते थे एवं उन पर बहुत श्रद्धा करते थे। कुछ लोग इसलिए श्रीरामकृष्ण से बहुत ईर्ष्या करते थे। वे समझते थे कि श्रीरामकृष्ण ने मन्त्र-तन्त्र के द्वारा उन पर कोई जादू कर दिया है। श्रीरामकृष्ण का ईश्वरत्व भला कितने लोगों के पास प्रकट हुआ था! रानी रासमणि और मथुरानाथ विश्वास को उनके ईश्वरत्व के विषय में जानकारी थी। उनका सगा भाँजा हृदय जो सदैव छायावत् उनके साथ रहा करता था, वह भी इस सत्य से अनभिज्ञ ही था। सबसे अधिक सेवा किसी ने की होगी, तो वह हृदयराम ही था। श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक अनुभवों को सबसे निकट से हृदयराम ने ही देखा था। परन्तु अन्तिम परिणाम क्या हुआ? उसे दक्षिणेश्वर से निकाल दिया गया। अन्त में कपड़े का गट्ठर पीठ पर लादकर कलकत्ते की गलियों में बेचा करता था। इसने अपने सगे मामा की कठोर साधनाएँ देखीं। उन्हें समाधि में लीन होते देखा था। उन्होंने हृदू को सिखा दिया था कि यदि ऐसी अमुक समाधि अवस्था देखो, तो ऐसा मन्त्र कान में फूँक देना आदि आदि। हृदयराम यह सब जानता है। परन्तु इतना सब जानते हुए भी क्या मामा के स्वरूप को जान सका? बिल्कुल भी नहीं जान सका। इसका कारण वह है, जिसकी हमने चर्चा की है।

एक दिन पंचवटी में श्रीरामकृष्ण ने देखा कि एक बछड़ा बहुत रँभाए जा रहा है। किसी ने उसको बाँध रखा था। श्रीरामकृष्ण ने हृदू को पुकारकर पूछा कि इस बछड़े को किसने बाँध कर रखा है? हृदू ने कहा कि मैंने ही इसे बाँध रखा है। क्यों? हृदू ने कहा कि कोई गाँव जाएगा, तो इसको साथ भिजवा दूँगा। जब बड़ा होगा, तो खेत में जोतूँगा। अब कहाँ कलकत्ता और कहाँ उसका गाँव! इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था उन दोनों में! उसने श्रीरामकृष्ण की अनेक अद्भुत अवस्थाओं को देखा था। फिर भी उसकी अवस्था में कोई परिवर्तन तो नहीं आया। हमलोग भी कभी-कभी कह देते हैं कि हम लोग यदि श्रीरामकृष्ण के समय होते, तो बहुत अच्छा होता। यह तो ठीक है, परन्तु जब पहचान पाते तब न! तात्पर्य यह है कि हम अपने जीवन में ईश्वर का अवतरण अभी भी कर सकते हैं। बशर्ते हमारा जीवन उन दोषों से मुक्त हो जाए, जिसकी चर्चा हमने इस श्लोक के माध्यम से की। मोघ, आशाएँ चली जाएँ। मोघ कर्म निकल जाएँ। मोघ ज्ञान दूर हो जाए, चित्त का विक्षेप दूर हो जाए। इन प्रकृतियों से हम लिपटे हुए हैं। जब इनका बन्धन हमारे जीवन से कट जाए, तो ईश्वर आज भी हमारे लिए सुलभ हो जाते हैं। वे प्रकट हो जाते हैं। इसके बाद का श्लोक आता है – **(क्रमश:)**

मनुष्य आज वैसा है, वह प्रकृति से अपनी तद्रूपता का नहीं, वरन् उससे अपने संघर्ष का परिणाम है ।

– स्वामी विवेकानन्द

उपवास का दर्शन

स्वामी अलोकानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

'सुखं मे भूयात्, न दुःखम् – मुझे सुख हो, दुःख नहीं, यह प्राणियों की चिरन्तर आकांक्षा है। पुण्यकर्म सुख प्रदान करता है, पापकर्म दुःख। इसीलिए सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिए ऋषि-मुनिगण शास्त्रों का मंथन करके नाना उपाय बता गए हैं। इन सभी उपायों में व्रत और उपवास श्रेष्ठ, सुगम और अन्यान्य साधनों के प्राथमिक अंग हैं। किसी कार्य या उद्देश्य की सिद्धि के लिये जो संकल्प लिया जाता है, उसे 'व्रत' कहा जाता है। इन व्रत-साधनों के अंगों में 'उपवास' मुख्य है। इसीलिए व्रत और उपवास दोनों का उच्चारण प्रायः एक साथ किया जाता है।

व्रत आचरण के द्वारा शरीर और मन की अशुद्धि दूर करके साधक को संकल्प-साधन के योग्य बनाता है। वैदिक युग में यह प्रथा थी कि यज्ञ का ऋत्विक होने के लिए वेद-पारंगत होने के साथ ही पहले अग्निहोत्री होना आवश्यक था। अग्निहोत्र एक व्रत है। उपनयन संस्कार के बाद यह बारह वर्ष तक अविच्छिन्न रूप से पालन करने पर उपासक दर्श, पौर्णमास आदि यज्ञों का अधिकारी होता था। सोमयाग, इष्टियाग आदि का अधिकारी होने के लिये इस उपासक को एक-एक प्रकार के व्रत का पालन करने का विधान शास्त्र में निर्दिष्ट है।

परवर्ती काल में पुराण आदि में व्रत और उपवास का प्रचलन अधिक दिखाई देता है। व्रत का पालन करने की अवधि में उपासक की जीवनचर्या और आहार-विहार में संयम अनिवार्य था। यद्यपि पंजिका आदि विभिन्न व्यवस्था - शास्त्रों में व्रत, उपवास को पालनीय बताया गया है तथापि उसका विशेष ज्ञान न होने से हमारे मन में अनेक शंकाएँ, प्रश्न, कौतूहल उठते रहते हैं। इसीलिए, इस आलेख में इस उपवास के बारे में शास्त्रीय सिद्धान्तों की विवेचना का प्रयास करते हैं।

हम एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या, शिवरात्रि, नवरात्रि आदि में उपवास के बारे में जानते हैं। इनमें विशेष रूप से एकादशी उपवास के बारे में विस्तृत विवेचन स्मार्त रघुनंदन भट्टाचार्य कृत 'एकादशी तत्त्व' शीर्षक ग्रंथ में पाई जाती है। शब्दकोशों में उपवास शब्द के कई अर्थ मिलते हैं – जैसे अनाहार, अनशन, वासस्थान, ग्राम इत्यादि। उपवस् धातु में घञ् प्रत्यय के योग से उपवास शब्द निष्पन्न होता है। सामान्यतः इसका अर्थ होता है – भोजन आदि की सम्पूर्ण या आंशिक निवृत्ति, केवल जल-ग्रहण या खाद्य और पेय दोनों का वर्जन। 'शब्दकल्पद्रुम' में इसका अर्थ है – **'अहोरात्रभोजनाभावः।'** उसमें उपवास के पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख इस प्रकार है – **'तत्पर्यायः उपवस्तम्, उपोषितम्, उपोषणम्, औपवस्त्रम्।''** राजा राधाकान्त देव बहादुर ने **(शब्दकल्पद्रुम, प्रथम खंड, पृ.१२०)** इसके बारे में शास्त्रवाक्य का अवलंबन लेकर प्रमाण उपस्थापित किया है –

''उपावृत्रस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः।।[१]

अर्थात् सभी पापकर्मों से निवृत्त होकर, सभी प्रकार के भोगों का वर्जन करके सर्वभूतों में दया, क्षमा, अनसूया, शौच, मंगल, अकृपणता आदि गुणों के साथ अवस्थान करना, इसे उपवास समझना चाहिए। 'वाचस्पत्यम्' कोश के प्रणेता तारानाथ तर्कवाचपति ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है।

ऐतरेय ब्राह्मण में याग के पूर्व दिन व्रतोपवास का पालन करते हुए दिनयापन का विधान है। शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण और श्रौत सूत्र आदि वैदिक विधि के प्रतिपादक ग्रंथों में अनशन या भोजन ग्रहण न करना भी उपवास के अर्थ में स्वीकृत है। मनुसंहिता में कहा गया है –

भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद् व्रती।
भैक्ष्येण व्रतिनो वृत्तिरूपवास समा स्मृता।''[२]

अर्थात् भिक्षाचर्या द्वारा नित्य जीवनधारण करना चाहिए। भिक्षाचर्या के द्वारा व्रती का जीवनयापन उपवास के समान समझना चाहिए।

मनुसंहिता में विविध पापों के मोचन हेतु कई व्रतों का उल्लेख है। उसमें प्राजापत्य व्रत के प्रसंग में उपवास विधि का उल्लेख है। प्राजापत्य व्रत बारह दिनों की साधना है। इस व्रत की उपवास-विधि में कहा गया है –

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्।

त्र्यहं परं च नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरन् द्विजः।।[३]

अर्थात् प्राजापत्य व्रत का आचरण करनेवाले द्विज को तीन दिन प्रात:काल में इसके बाद तीन दिन सायं काल में, इसके बाद तीन दिन अयाचित भाव से भोजन करना चाहिए। इसके बाद के तीन दिन अनाहार रहना चाहिए। टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने भोजन की ग्रास संख्या का निरूपण करते हुए पराशर के कथन को उद्धृत किया है –

सायं द्वाविंशतिग्रासः प्रातः षडविंशतिस्तथा।

अयाचिते चतुर्विंशत् परं चानशनं स्मृतम्।।

कुक्कुटाण्डप्रमाणं च यावांश्च प्रविशेन्मुखम्।

एतं ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं कामशोधनम्।[४]

संहिताकार मनु ने और भी जिन व्रतों के बारे में बताया है, उनमें दो दिनों के सान्तपन व्रत की भी चर्चा मिलती है। यह दो प्रकार का है – १. कृच्छ्र सान्तपन और २. महासान्तपन। द्विजातियों के लिये अतिकृच्छ्र का विधान करते हुए कहा है –

एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहानि त्रीणि पूर्ववत्।

त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन द्विजः।।[५]

अर्थात् प्रथम तीन दिन तक एक ग्रास भोजन, इसके बाद तीन दिन सायंकाल एक ग्रास भोजन, अयाचित भाव से तीन दिन एकग्रास भोजन, अंत में तीन दिन उपवास करना चाहिए।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में उपवास निकट या समीप वास करना बताया है – '**एतत् कृत्वोपवसति**' (१/१४/१६)। वेद के भाष्यकार ने उपवास का अर्थ किया है – '**श्वो यागार्थोऽगि समीपे नियमविशिष्टो वासः उपवासः।**'' अर्थात् आगामी दिन को कृत्य याग के निमित्त अग्नि के समीप संयत नियमपूर्वक वास को ही उपवास कहा जाता है।

उपवास के शब्दार्थ के बारे में विभिन्न मतों का सामंजस्य करके कहा जा सकता है कि ईश्वर के समीप वास के लिये साधक जिस प्रक्रिया में परिमित आहार या वर्जित आहारपूर्वक साधना करते हुए रहते हैं, उसे उपवास कहते हैं।

उपवास नित्य, काम्य और नैमित्तिक भेद से तीन प्रकार के होते हैं। 'वाचस्पत्यम्' कोश के प्रणेता कहते हैं – ''**स च उपवासः नित्यः काम्यः नैमित्तिकश्चेति त्रिधा। तत्रैकादशी शिवरात्र्याद्युपवासो नित्यः।**'' अमावस्या, द्वादशी, संक्रान्ति और रविवार को उपवास काम्य है। नैमित्तिक उपवास है प्रायश्चित के रूप में उपवास। उस विषय में, ''**त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। त्र्यहं परंच नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरन् द्विजः।।**'' इत्यादि मनुवाक्य को उद्धृत करके वाचस्पत्यम् कोश में विवृत किया गया है।

हिन्दू धर्म में उपवास के अर्थ में आहार-विहार के संयम को ही महत्त्व दिया गया है। एकादशी, पूर्णिमा, प्रदोषकालीन उपवास बहुत लोग करते हैं। विभिन्न देवी-देवताओं के उपासक उन-उन देवी-देवताओं के विशेष पर्व पर उपवास को महत्त्व देते हैं। शैव शिव के दिन सोमवार को, विष्णु-उपासक बृहस्पतिवार को, अयप्पा के भक्त शनिवार को उपवास करते हैं। दक्षिण और उत्तर-पश्चिम के हनुमान-भक्त मंगलवार को उपवास करते हैं। दक्षिण भारत में मंगलवार को मरियम्मा का व्रत और उपवास किया जाता है। उत्तर भारत में कहीं-कहीं बृहस्पतिवार को उपवास प्रचलित है। शिवरात्रि और नवरात्रि का व्रत और उपवास सारे भारत में विशेष प्रचलित है। इसके अतिरिक्त दीपावली, श्रावण आदि त्यौहारों और स्त्रियों के विभिन्न व्रतों में उपवास की प्रथा हिन्दू शास्त्र में पाई जाती है।

इस सभी उपवासों के समय आहार और दैनिक जीवनचर्या में संयम के साथ-साथ जप, पूजा, प्रार्थना, स्तोत्रपाठ, व्रतकथा का पाठ और श्रवण किया जाता है। उस समय हलका आहार ग्रहणीय है। कोई-कोई केवल दूध पीकर ही उपवास करते हैं।

उपवास का महत्त्व विभिन्न धर्मशास्त्रों में वर्णित है। याज्ञवल्क्य संहिता के प्रायश्चित्ताध्याय में कहा गया है –

वेदानुवचनं यज्ञो ब्रह्मचर्यं तपो दमः।

श्रद्धोपवासः स्वातन्त्र्यमात्मनो ज्ञानहेतवः।।[६]

अर्थात् वेदाध्ययन, यज्ञ, ब्रह्मचर्य, तपस्या, दम, श्रद्धा, उपवास और संग-त्याग; ये सभी कार्य आत्मज्ञान के हेतु हैं।

महाभारत के अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर में भीष्मदेव ने बहुत विस्तार से इसकी महिमा बतलाई है। महाराज युधिष्ठिर ने भीष्मदेव से सर्वोच्च तपस्या के बारे में

जिज्ञासा की, तो भीष्मदेव ने आहार-संयम या उपवास को ही सर्वोत्तम बताया। इस प्रसंग में उन्होंने प्रजापति ब्रह्मा और भगीरथ के संवाद का उल्लेख किया है। भगीरथ ने उपवास का माहात्म्य बताते हुए प्रजापति से कहा था –

कामं यथावद् विहितं विधात्रा
पृष्टेन वाच्यं तु मया यथावत्।
तपो हि नान्यच्चानशनान्मतं मे
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।।[७]

अर्थात् हे देवश्रेष्ठ! मैंने अपनी इच्छानुसार विधिपूर्वक अनशन व्रत का पालन किया है। आप संसार के विधाता पुरुष हैं। आपने जिज्ञासा की है, आपको यथोचित उत्तर देना कर्तव्य है, इसलिए मैंने आपको यह सब बताया है। मेरी समझ में अनशन व्रत की अपेक्षा श्रेष्ठ कोई तपस्या नहीं है।

अनुशासन पर्व के १०९वें अध्याय में युधिष्ठिर पुन: प्रश्न करते हैं, पृथ्वी पर प्रचलित सभी प्रकार के उपवासों में सर्वोत्तम और सर्वोच्च फल देनेवाला उपवास कौन है? भीष्मदेव ने उत्तर देते हुए कहा –

द्वादश्यां मार्गशीर्षे तु अहोरात्रेण केशवम्।
अर्च्याश्वमेधं प्राप्नोति दुष्कृतं चास्य नश्यति।।
अतः परं नोपवासो भवतीति विनिश्चयः।
उवाच भगवान् विष्णु स्वयमेव पुरातनम्।।[८]

युधिष्ठिर ने पुन: पूछा – 'म्लेच्छ सहित सभी जातियों में उपवास की महिमा विशेष रूप से देखी जाती है। संसार के सभी लोग इस व्रत का उद्यापन करके क्या फल प्राप्त करते हैं?'' भीष्मदेव ने महर्षि अंगिरा का वाक्य उद्धृत करते हुए यह उत्तर दिया –

ब्रह्मरात्रे त्रिरात्रं तु विहितं कुरुनन्दन।
द्विस्त्रिरात्रमथैकाहं निर्दिष्टं पुरुषर्षभ।।...
यजिष्णुः पंचमीं षष्ठीं कुले भोजयते द्विजम्।
अष्टमीमथ कौरव्य कृष्णपक्षे चतुर्दशीम्।।
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते।।
मार्गशीर्षं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत्।
भोजयेच्च द्विजान् शक्त्या स मुच्येद् व्याधिकिल्विषैः।।[९]

केवल हिन्दू धर्म में ही नहीं, संसार के अन्य मुख्य धर्मों में भी उपवास का महत्त्व बताया गया है। बौद्धधर्म में विनय पिटक के नियमानुसार मध्यकालीन आहार के बाद उपवास का विधान अध्यात्म भावना के साथ सुस्वास्थ्य, रोगहीनता और बल प्राप्त करने के उपाय के रूप में स्वीकृत है। इसके अतिरिक्त वे किसी पर्व के उपलक्ष्य में निरन्तर ध्यानाभ्यास के दौरान केवल दूध पीकर रहते हैं।

इस्लाम धर्म में रमजान के महीने में पूरे एक महीने दिन में निराहार रहकर उपवास या रोजा रखने की प्रथा प्रचलित है। रोजा का अर्थ है जला डालना। इस अवधि में मुसलमान बातचीत में संयम रखते हैं और मन में हिंसा, विवाद, द्वंद्व से परहेज रखते हुए साधना करते हैं। दुरवस्थाग्रस्त, पीड़ित और गरीबों के लिये प्रार्थना भी उनकी इस साधना का अंग है। इस धर्म में कुल मिलाकर छह प्रकार का रोजा प्रचलित है।

बहाई धर्म में 'आला' महीनों में (१/२ मार्च से १९/२० मार्च तक) सूर्योदय से सूर्यास्त तक उपवास रखने का विधान है। बहाई धर्मग्रंथ 'किताब-ए-अकदास' में आला महीने में दिन में धूमपान सहित सभी प्रकार के आहारवर्जन का निर्देश है। केवल जीवनदायी औषध ग्रहण करने की अनुमति है।

यहूदी धर्म में दो प्रधान उपवासों का विधान है – १. योम किप्पूर (yom kippur) और २. तिषा बी'एव (Tisha B/AV).

ताओ धर्म में मनुष्य 'अियान्' या अमर होने के उद्देश्य से उपवास या खाद्य वस्तुओं में संयम रखता था। बाद में शरीर में अवस्थित आयु क्षय करनेवाले अपदेवता के विनाश के लिये कई प्रकार के उपवासों की प्रथा चल पड़ी।

गुरुग्रंथ साहेब में कहा है – ''उपवास, नित्यपूजा और कठोरता का जो अभ्यास करते हैं, वे कम पुरस्कृत हैं।''[१०] इसलिए चिकित्सा को छोड़कर किसी प्रकार का उपवास सिक्ख धर्म में स्वीकृत नहीं है। वे मानते हैं कि जीव मात्र के लिए ज्ञानार्जन आवश्यक है, जो गुरुवाक्य में श्रद्धा और मनन के द्वारा प्राप्त होता है। केवल शरीर को तपाना देह के ऊपर अत्याचार के सिवा और कुछ नहीं है। फिर भी यह बात भी कही गई है – यदि तुम उपवास करना चाहते हो, तो सभी जीवों पर दया, कल्याण और शुभेच्छा की प्रार्थना करते हुए उसका अनुष्ठान कर सकते हो।

इसके बावजूद सिक्ख धर्म में उच्चतम लक्ष्य पर पहुँचने के लिये शिक्षा दी गई है। 'पंचभूतों के फंदे में पड़कर ब्रह्म को भी रोना पड़ता है' – इस तत्त्व में सिक्ख विश्वास करते हैं। इसीलिए पंचभूत (वे कहते हैं 'पंचचोर') से मुक्ति प्राप्त करने के लिए निर्देश दिया गया है – ''प्रत्येक मास के नवें

दिन व्रत ग्रहण करो, इंद्रियों की भोगवासना, क्रोध आदि का भक्षण करो और सत्य भाषण करो। दसवें दिन दस द्वार को संयत करके ग्यारहवें दिन जानोगे कि ईश्वर एक है। बारहवें दिन देखोगे कि पंचचोर चले गये हैं।

"हे नानक! तब तुम्हारा मन शान्त हो जाएगा। हे पंडित! इस प्रकार के उपवास का पालन करो, अन्य उपदेश से क्या मतलब।"[११]

ईसाईधर्म के प्राय: सभी सम्प्रदायों में उपवास की महिमा है। किन्तु उनमें प्रकार भेद भी है। रोमन कैथलिक सम्प्रदाय में 'उपवास' का पारिभाषिक अर्थ ही लिया जाता है। वे उपवास का अर्थ पूरी तरह आहार-वर्जन नहीं बताते। कुछ सीमित मात्रा में प्रात: और सायंकाल आहार ग्रहण निर्दिष्ट है। किन्तु विशेष पर्व-त्यौहार के दिन भोजन में मांस वर्जित है। उपवास के दिनों में कभी पूर्ण आहार, कभी अर्धाहार का वर्जन और ईश्वर के आगे प्रार्थना आदि का निर्देश ईसाई धर्मग्रंथों में पाया जाता है।

गुडफ्राईडे एक सार्वजनीन विशेष उपवास का दिन है। इसके अतिरिक्त बाइबिल में १८ प्रकार के उपवासों का उल्लेख मिलता है। वे इस प्रकार है – १. Public disorder (प्रथम सैमुएल-३१), २. Private emotion (प्रथम सैमुएल - १/७), ३. Grief (द्वितीय सैमुएल-१२/१६), ४. Anxiety (डैमिएल ६/१८), ५. National Repentence (प्रथम सैमुएल-७/६), ६. Approaching danger (ईस्टर-/१६), ७. Sad News (नौहिसिम १/४), ८. Sarved ordination Acts (प्रेरित १३/३), ९. Accompainment of prayer (लूड-२/३७), १०. Confession (नौहिमिया ९/१), ११. Mourning (जो एल-२/१२), १२. Avoid display (मशि १६/८), १३. Remember God (सौखरिया ७/५-६), १४. Chastin the Soul (गीता संहिता ३९/१०), १५. Humble the Soul (गीता संहिता ३५/१२-१३), १६. Consider the True Meaning of ... (शिखाइया-५८/६-७), १७. Result of divine guidance (विचारक गण का विवरण - २०/२६), १८. Victory of Temptation (मथि ४/१२)[१२]

आध्यात्मिक जीवन के अतिरिक्त शारीरिक रोग-व्याधि से मुक्ति आरोग्य के क्षेत्र में, चिकित्साशास्त्र के अनुसार शारीरिक अवस्था के परीक्षण में उपवास की भूमिका होती है। लोग कहते हैं – 'खाए बिना मरता है।' वस्तुत: खाए बिना मरने की अपेक्षा खाकर मरने वालों की संख्या ही अधिक है। अनाहार जिस प्रकार शरीर के लिये हानिकर है, उसी प्रकार अपरिमित आहार भी शरीर की द्रुत क्षति करता है। श्रीभगवान ने गीता में इसीलिए मध्यमार्ग के अवलम्बन का परामर्श देते हुए कहा है –

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।...
युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[१३]

वर्तमान में वैकल्पिक चिकित्सा व्यवस्था में और प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास आदि आहार-संयम का महत्त्व बहुत अधिक रहता है।

भारतीय प्राचीन चिकित्सा पद्धति में आयुर्वेदशास्त्र वात, कफ और पित्त की साम्यावस्था को ही स्वस्थ शरीर का लक्षण बतलाता है। आहार ग्रहण से शरीर रसस्थ होता है, पाचन यंत्र की क्रिया में वृद्धि होती है। फलस्वरूप जठराग्नि मंद हो जाती है, जिससे अग्नि मांद्य, अजीर्ण, उदर रोग आदि अनेक प्रकार के रोगों की वृद्धि होती है। इसीलिए बीच-बीच में उपवास शारीरिक यंत्र को विश्राम देकर जठराग्नि को पुन: सक्रिय करता है। आधुनिक चिकित्सा के क्षेत्र में उपवास को महत्त्व देकर विशेषज्ञों ने सबको इस नियम का अनुसरण करने के लिये प्रोत्साहित किया है। अंग्रेज डॉ. सिंक्येवार कहते हैं – "उपवास मानव शरीर का संरक्षक है, जिसके द्वारा शरीर और मन रोगाक्रान्त अवस्था से छुटकारा पाता है। उपवास उत्तम स्वास्थ्य की कुंजी है।"[१४] डॉ. ज्योन कीथ के मतानुसार, "उपवास प्रत्येक मनुष्य के वृद्धत्व को दूर रखता है।"[१५] अमेरिका के प्रसिद्ध चिकित्सक डायूड ने कहा है, 'उपवास से मनुष्य का जीवन लम्बा हो सकता है। वह मृत्यु को कुछ दिन ठेल कर दूर रख सकता है।"[१६]

साधारणत: शल्य-चिकित्सा के पूर्व या किसी-किसी रोग की जाँच के पहले आहार-वर्जन चिकित्साशास्त्र में विहित है। रक्त शर्करा (सुगर) कोलेस्ट्राल की जाँच के पहले कुछ अधिक समय के लिये उपवास का निर्देश दिया जाता है। इससे शरीर में वह न्यूनतम अवस्था परिलक्षित होती है, जहाँ से जाँच करना सुगम हो जाता है। शल्य चिकित्सा के पूर्व उपवास शरीर की अनेक प्रतिक्रियाओं को रोकने में समर्थ बनाता है। किसी-किसी क्षेत्र में भीतरी शरीर की सफाई के लिये भी उपवास वांछनीय होता है। मनुष्य के

मन की हताशा का प्रतिरोध करने में भी उपवास का महत्त्व चिकित्साशास्त्र में स्वीकृत है।

चिकित्सा वैज्ञानिकों का अभिमत है कि उपवास मनुष्य के शरीर के 'प्रतिरोधात्मक तंत्र' को निश्चित रूप से शक्तिशाली बनाता है। इस विषय में वे विशेष रूप से कहते हैं, इस तंत्र के 'फिगोसाइट्स' और 'लिम्फोसाइटस्' को रक्त की श्वेत कणिकाएँ उपवास के समय आश्चर्यजनक रूप से सक्रिय कर देती हैं। लिम्फोसाइट्स दो प्रकार के हैं – बी-सेल्स और टी-सेल्स, जो शरीर में आगत जीवाणु या विषाणु को धीरे-धीरे परास्त करते हैं और रक्त के शोधन के माध्यम से शरीर को कार्यक्षम बनाते हैं। जो कोष मनुष्य को वृद्धत्व की राह पर ले जाते हैं, उनको ये दोनों 'सेल्स' अक्षम कर देते हैं।''[१७]

डॉ. पी.डी. गुप्त कहते हैं, ''उपवास मनुष्य के शरीर को दुर्बल नहीं करता। .... नियमित उपवास (अनाहार – प्रति सप्ताह या पक्ष में एक दिन) एंजाइम प्रणाली को सक्रिय बनाए रखता है। वे कहते हैं कि शरीर और मन को सतेज रखने में उपवास नितान्त उपयोगी है।''[१८]

इसके अतिरिक्त लौकिक सुख-सुविधा की प्राप्ति या लौकिक उद्देश्य की सफलता की आशा से बहुत लोग उपवास करते हैं। खाने-पीने का अभाव होने पर तो स्वाभाविक रूप से ही उपवास करना पड़ता है और मृत्यु की चपेट में आना पड़ता है। अकाल के दौरान इस प्रकार के उपवास से मरनेवालों की संख्या बहुत होती है। लड़के-लड़कियाँ कोई चीज पाने की आशा से माता-पिता या बड़े-वृद्धों के आगे तरह-तरह की माँगे रखकर उपवास, अनशन करते हैं। राजनैतिक नेता विभिन्न उद्देश्यों की सफलता हेतु उपवास, या अनशन करते हैं। लेकिन ये सभी स्वार्थसिद्धि या किसी सामयिक कारण से किये जानेवाले उपवास हैं, इसीलिए कुछ लोग उनकी प्रशंसा भले करें, किन्तु इनका विशेष महत्त्व नहीं है। आध्यात्मिक जीवन के उन्नयन में और शारीरिक रोग-व्याधि के शमन या उन्मूलन के साथ शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिये उपवास के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ○○○

सन्दर्भ सूची : १. तारानाथ तर्कवाचस्पति (संकलक), वाचस्पत्यम् अभिधानम्, चौखंभा संस्कृत सीरीज ऑफिस, १९६२, खण्ड-२, पृ. १३२३, **२.** डॉ. मानवेन्दु वन्द्योपाध्याय शास्त्री (सम्पादक एवं अनुवादक), मनुसंहिता, संस्कृत पुस्तक भण्डार, कोलकाता, १४१०, २/१८८, **३.** वही, ११/२१२, **४.** मनुसंहिता, कुल्लूक भट्टिका, पृ. ९७३, वसुमती साहित्य मन्दिर, **५.** मनुसंहिता, ११/२१४, **६.** याज्ञवल्क्य संहिता ३/१९०, **७.** महाभारत, अनुशासन पर्व, गीताप्रेस गोरखपुर १०३/४२, **८.** वही, १०९/३-४, **९.** वही , १०६/११, १६-१७, **१०.** गुरुग्रंथ साहेब, अंग २१६, **११.** वही, अंग १२४५, **१२.** ''युग शंख'' पत्रिका (३/११/२००३) में उरगेन्द्र भट्टाचार्य द्वारा लिखित, द्रष्टव्य स्वामी नित्यात्मानन्द, श्रीश्रीदेवी ओ तिथि रूपे एकादशी, चड़ाघाटा श्रीरामकृष्ण-सारदा सेवाश्रम, दक्षिण २४ परगना, २००५, पृ. ७५-७७, **१३.** श्रीमद्भगवदगीता ६/१६-१७, **१४.** श्रीश्रीदेवी ओ तिथिरूपे एकादशी, पृ.७५-७७, **१५.** वही, **१६.** वही, पृ.७८, **१७.** वही, **१८.** वही, पृ. ७९.

पृष्ठ ३९७ का शेष भाग

यह **यत्** जो **मूर्तं च अमूर्तं च** स्थूल तथा सूक्ष्म है, **सर्वं वै** यह सभी कुछ **तस्मात्** सूक्ष्म से पृथक् किया हुआ **मूर्तिः** स्थूल **रयिः** अन्न **एव** ही है।

भावार्थ – सूर्य ही प्राण (ऊर्जा) और अन्न ही सोम या चन्द्रमा है, यह जो स्थूल तथा सूक्ष्म है, सभी कुछ सूक्ष्म से पृथक् किया हुआ स्थूल अन्न ही है।

भाष्य – तत्र आदित्यो ह वै प्राणो अत्ता अग्निः। रयिरेव चन्द्रमाः। रयिः एव अन्नं सोम एव। तद्-एतद्-एकम् अत्ता च अन्नं च, प्रजापतिः एकं तु मिथुनम्। गुणप्रधान-कृतो भेदः। कथम्?

भाष्यार्थ – इस (जोड़ी) में आदित्य ही प्राण, भोक्ता या अग्नि है। रयि ही चन्द्रमा है; रयि ही अन्न या सोम है। यहाँ भोक्ता तथा अन्न एक ही हैं, (क्योंकि) एक ही प्रजापति 'जोड़ी' के रूप में बना हुआ है। (दोनों के बीच केवल) गुण की प्रधानता से ही भेद है। (यह भेद) कैसे है?

भाष्य – रयिर्वा अन्नं वा एतत् सर्वम्; किं तद्यन्यमूर्तं च सूक्ष्मं च मूर्तामूर्ते अतृ-अन्नरूपे रयिः एव। तस्मात् प्रविभक्तात् अमूर्तात् यद्यदन्यन् मूर्तरूपं मूर्तिः सैव रयिः अमूर्तेन अद्यमानत्वात्॥५॥

भाष्यार्थ – यह सब कुछ रयि या अन्न ही है। सब कुछ अर्थात् क्या? जो कुछ भी मूर्त (साकार) या स्थूल है और जो कुछ भी अमूर्त या सूक्ष्म है; (अर्थात्) स्थूल तथा सूक्ष्म के रूप में, जो कुछ भी अन्न तथा भोक्ता है, वह सब कुछ रयि (चन्द्रमा) या अन्न ही है। उस सूक्ष्म से रयि अर्थात् स्थूल या अन्न पूर्णतः भिन्न है, क्योंकि वह सूक्ष्म के द्वारा खाया जाता है। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (९५)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२२-०८-१९६३

स्वामी प्रेमेशानन्द

एक सज्जन होम्योपैथिक डॉक्टर हैं, आय कम है, घर-गृहस्थी है और इधर साधु-सेवा करने की भी इच्छा है। प्रेमेश महाराज को गुरु के समान श्रद्धा करते हैं। वे अपने घर-परिवार की ओर ध्यान न देकर आश्रम में रहना पसन्द करते हैं। इसीलिए उन्हें समझाते हुए महाराज कहते हैं – "तुम्हारे लड़के-बच्चे हैं, उनमें भी तो नारायण हैं। उनकी सेवा करने से भी नारायण की सेवा होगी। जैसे साधु लोग यहाँ सेवाश्रम में सेवा करते हैं, तुम्हारे लिए तुम्हारा घर सेवाश्रम होगा।"

आज प्रात: 'दीक्षार्थियों के लिये निर्देश' नामक छपा पर्चा पढ़ा गया। उसे सुनकर प्रेमेश महाराज ने कहा – "इसमें यदि एक और निर्देश रहता, तो अच्छा होता। जो इस निर्देश के अनुसार उपयुक्त पात्र नहीं हैं, वे इसे पढ़कर और अच्छी तरह समझकर तैयार हो जाएँ। जो निष्ठावान हैं, उनको कोई असुविधा नहीं है।

"यहाँ जो रामकृष्ण के भक्त होंगे, वे समाज के सर्वाधिक सुसंस्कृत होंगे। सारगाछी में रहते समय मैंने कहा था, मेरी अनुमति के बिना दीक्षा नहीं होगी। एक व्यक्ति नेशनल स्कूल में पढ़ता था। एक दिन स्कूल में ही मैंने उससे कहा, "तुम अपराह्न में मुझसे मिलो।" कैसा नेत्र, चेहरा, देहगठन, गम्भीर! उसके बाद से उसने किसी दिन भी चूक नहीं की, सैकड़ों आँधी-वर्षा में भी प्रतिदिन आता। कोई बात नहीं करने पर भी आकर चुपचाप बैठा रहता! इसके बाद एन्ट्रेन्स पास किया। मैंने कॉलेज में पढ़ने को कहा। वहाँ मलेरिया फैला था। उसने वापस आकर कहा कि पढ़ना सम्भव नहीं होगा। वह आकर संघ में सम्मिलित हो गया। मैंने गीता की कक्षा में देखा, वह खूब मेधावी है।"

सेवक निकट बैठकर पातंजल योगसूत्र पढ़ रहा था।

महाराज : तुम कितना ही पढ़ो न! जान लो, दीर्घकाल तक निरन्तर 'सत्कारासेवित" होना होगा। यही देखो न, यह छोटा-सा लेख भी नहीं पढ़ पा रहा था। बहुत देर तक उसे पकड़कर देखते-देखते समझ में आया कि इस कागज को ही उलटा पकड़ा हूँ, सीधा करते ही सब स्पष्ट हो गया।

जब तक देहबुद्धि नहीं जाती, हमारे सभी संस्कार रहते हैं। ब्रह्मज्ञान नहीं होने तक प्रसुप्त-तनु-विच्छिन्न या उदार भाव में रहता है।

२३-०८-१९६३

वार्तालाप के प्रसंग में बृहस्पतिवार के दिशाशूल के सम्बन्ध में बात उठी। तब महाराज बोले, "क्या सब कुछ मानकर चलना सम्भव है? जो शास्त्रसम्मत है, वही करो। टाइटैनिक जहाज डूब गया था। क्या सभी यात्रियों ने अश्लेषा-मघा नक्षत्र में यात्रा की थी?

"मैं लोगों को ढूँढता रहता था। इसका उद्देश्य साधु बनाना नहीं था। इसका उद्देश्य था कि ठाकुर के भाववाला कोई व्यक्ति मिलता है या नहीं, जिसके भीतर चारों ही योग प्रस्फुटित होंगे, जो इच्छा करते ही सब कुछ छोड़कर रह सकेगा। हमलोग साधन पर उतना जोर नहीं देते हैं। क्योंकि मार्ग में अनेक विघ्न हैं – मान-यश, विभूति और सात्त्विक सुखों के बन्धन। इसीलिए हम लोग कहते हैं – भगवान के प्रति आकर्षण होना अच्छा है।

"गीता का द्वितीय अध्याय और राजयोग का समाधिपाद यही दो मानो साध्य-साधन हैं। द्वितीय अध्याय सुनकर लगता है कि इसके अतिरिक्त संसार में जानने योग्य दूसरा क्या है! इसे पढ़ने से ही काम हो जाएगा।

"केवल पढ़ो, कहने से ही काम नहीं होता। कब पढ़ेगा, उसे वह सुअवसर भी देना होगा। श्रीश प्रतिदिन निर्मल महाराज (स्वामी माधवानन्द जी) का समाचार लेकर मठ की डिस्पेन्सरी के ऊपर जाता था। उसे मैं प्रतिदिन थोड़ी गीता

पढ़ाता था। कानपुर का सौरीन कनखल सेवाश्रम (हरिद्वार) में मेरा भोजन तैयार कर देता, उसे एक कागज पर एक श्लोक लिख देता। वह उसे साथ में रखता और अन्य कार्यों के बीच-बीच में पढ़ता रहता था। बताओ, इतना हंगामा करने कौन जाये!''

२४-०८-१९६३

महाराज – केवल जप-ध्यान करने से ही कोई साधु नहीं हो जाता। साधु का मस्तिष्क, हृदय और हाथ सुविकसित होना चाहिए। जो लोग केवल जप-ध्यान करते हैं, वे एक प्रकार के हैं। इतना बड़ा उत्तरदायित्व, इतने लोगों का दायित्व सिर पर लेकर इस प्रकार दिन बिताना? यह अन्याय है!

२५-०८-१९६३

महाराज – नाम-जप में खानदानी किसान की तरह लगे रहना होगा – मन लगे या न लगे। धक्का मारकर या जैसे भी हो, अपने साधन-भजन का सुयोग जुटा लेना होगा। रात में दस बजे के भीतर सोकर तीन बजे भोर में उठ जाना। प्रात: श्रीरामकृष्णवचनामृत, गीता और राजयोग सूत्र तथा दोपहर में सत्प्रसंग, गीता और राजयोग का पाठ करना। इसके लिये अन्य लोगों में अप्रिय होने से भी क्या हुआ! यह आत्मपरक जीवन है।

सेवक – यदि वक्तृता देने का आदेश हो, तो?

महाराज – वक्तृता सुव्यस्थित नहीं देने से उससे कोई लाभ नहीं होता! किन्तु अपनी वीरता और नाम हो सकता है। साधन-भजन रहने से उस बात से काम होता है, तब अपना भी उपकार होता है।

२९-०८-१९६३

महाराज – वचनामृत है – मानो भोजन के लिए सामग्री रख दी गयी। ये सब सामग्री भण्डार में सजाकर रखी हुई हैं। उन्हें लेकर पकाकर भोजन करने से ही हुआ।

३१-०८-१९६३

महाराज की स्वस्थता हेतु कालभैरव और माँ संकटा को पूजा चढ़ाने की बात कहने पर उन्होंने कहा, ''क्या करूँ, अपना सर्वस्व तो एक जन के चरणों में समर्पित कर दिया हूँ। ठाकुर मेरे विश्वनाथ, श्रीमाँ मेरी अन्नपूर्णा तथा स्वामीजी मेरे कालभैरव हैं।

''हमारे यहाँ कैसे सब अच्छे-अच्छे युवक आते हैं! संघ में दो वर्ष रहते हैं, किन्तु अपनत्व का अनुभव नहीं कर पाते, इसमें हमलोगों का ही दोष है। तुम लोग सब देखो, मैं तो चला! साधु केवल अधिक जप-ध्यान लेकर रहे, तो हम लोग विश्वास नहीं करते, साधु की तीक्ष्ण बुद्धि होनी चाहिए। जो लोग दिन भर जप-ध्यान, माला लेकर रहते हैं, वे ऊँचे हो सकते हैं, किन्तु ठाकुर के भावानुरूप व्यक्ति नहीं होंगे।

''अखण्डानन्द महाराज एक व्यक्ति को ध्यान से उठाकर पौधे में जल डलवाते। प्रारम्भ में मैं इस पर नाराज हुआ था, किन्तु बाद में उनका जीवन देखकर समझ गया कि बाबा ने ठीक ही किया था। जो सात्त्विक है, वह शान्त रहेगा। किन्तु वे लोग एक मिनट भी चुपचाप बैठ नहीं सकते। शरीर के बैठे रहने पर भी मन उछल-कूद करता है। साधन-भजन सब चूल्हे में गया अर्थात् नष्ट हो जाता है।

प्रश्न – महाराज, आपके साथ इतने वर्ष छाया की तरह रहा। आपको एक दिन भी क्रोधित होते नहीं देखा। इसका कारण क्या है?

महाराज – मेरे गुरुजी ने मेरा क्या नाम दिया है, देखते नहीं हो! मेरा किसी पर भी क्रोधित होना सम्भव नहीं है।

काशी में रहते समय महाराज को लाजेन्स खाने की विशेष रुचि हुई थी। सम्भवत: डायबिटीज के कारण हुआ हो। महाराज के सुगर और अन्य स्थिति को देखते हुए बीच-बीच में डॉक्टर के परामर्श के अनुसार सब चीजें देनी होती थीं। एक दिन उन्होंने हठ किया कि एक लाजेन्स देना ही होगा। अनेक प्रकार से समझाया जा रहा है, बातचीत के प्रसंग को बदला जा रहा है। सब कुछ ठीक से कर रहे हैं किन्तु, लाजेन्स का हठ नहीं छोड़ रहे हैं। अन्ततोगत्वा, शाम के समय महाराज के हाथ में लाजेन्स दिया। उसी समय अद्वैत आश्रम के पुजारी महाराज आए। वे प्रतिदिन अपने हिस्से में से ठाकुर के प्रसादी पायस का कुछ अंश लाकर महाराज को और सेवक को देते थे।

लाजेन्स हाथ में पाते ही, कहीं कोई उनसे छीन न ले, ऐसा सोचकर महाराज उस लाजेन्स को एक प्रकार से लपेटे हुए कागज सहित मुख में डालकर चूसने लगे, मुख और नेत्रों में विजयी होने का आनन्द का ज्वार फूट पड़ा। **(क्रमश:)**

संघर्ष से बनता है सफलता का इतिहास

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

महाराष्ट्र के एक परिवार में एक कन्या का जन्म हुआ। माता-पिता ने उसका नाम चिंदी रखा। जिसका अर्थ होता है - फटा हुआ कपड़ा। चिंदी के पिता उसे शिक्षित करना चाहते थे, पर उसकी माता इसके विरुद्ध थीं। पिता उसे मवेशी चराने के बहाने पाठशाला भेजा करते थे। गरीब परिवार में उसकी शिक्षा चौथी कक्षा तक ही हो पाई थी कि नौ वर्ष की उम्र में उसका विवाह बीस वर्ष के पुरुष के साथ हो गया। चिंदी की पढ़ाई में बहुत रुचि थी, परन्तु उसके पति को यह स्वीकार न था। चिंदी को यदि कोई कागज का टुकड़ा भी मिल जाता, तो वह उसे पढ़ा करती थी। पर यह देखते ही उसके पति उस कागज को फाड़कर फेंक देते या जला देते थे। क्योंकि वे स्वयं अनपढ़ थे। पर चिंदी की पढ़ाई में रुचि कम न हुई। यदि कोई कागज का टुकड़ा मिल जाता, तो वह पढ़कर उन पन्नों को खा जाती थी।

उसने वन विभाग और जमींदारों द्वारा गोबर एकत्रित करनेवाली महिलाओं के आर्थिक शोषण के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। इससे वहाँ की महिलाओं को लाभ हुआ। परन्तु एक व्यक्ति को हानि हुई, जो पहले इसका लाभ उठाया करता था। तब उसने चिंदी से प्रतिशोध लेने के लिए चिंदी पर एक मिथ्या आरोप लगाया। उसने चिंदी के पति से कहा कि गर्भ में पल रहे शिशु का पिता वह है। यह सुनकर चिंदी के पति को बहुत क्रोध आया। उसने नौ महीने की गर्भवती चिंदी को लात मारी, जिससे वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। तब उसके पति ने उसे घसीटकर गौशाले में छोड़ दिया। गायों की रस्सियाँ खोल दी, जिससे वह गायों के पैरों तले दबकर मर जाए। गायों के भागदौड़ के बावजूद एक गाय उसके ऊपर सुरक्षा कवच की भाँति खड़ी रही और उसी स्थिति में उसने एक कन्या को जन्म दिया। नाल तोड़ने के लिए उसके पास कुछ न था। तब उसने दो पत्थरों से सोलह बार प्रहार करके नाल तोड़ा। इसके पश्चात् वह अपने मायके गई, परन्तु वहाँ उसे स्थान न मिला। तब बाध्य होकर वह रेलवे स्टेशन में भीख माँगने लगी। पेट पालने की व्यवस्था तो हो गई, परन्तु रहने का कोई स्थान नहीं था। उसने इतना सुन रखा था कि रात को श्मशान में कोई नहीं जाता। अत: उसने अपनी इज्जत बचाने के लिए रात में श्मशान में रहने का निर्णय लिया। वह श्मशान में जल रहे आग पर रोटियाँ सेंका करती थी। श्मशान में फेंके गए कपड़ों को माँ-बच्ची पहना करती थी। फिर ऐसे जीवन से तंग आकर उसने आत्महत्या करने का निर्णय लिया। वह कुछ दूर चली ही थी कि किसी के कराहने की आवाज आई। वह बहुत बीमार और प्यासा था। चिंदी ने सोचा चलो मरने से पहले कुछ पुण्य करके मरें। उसने उसे पानी पिलाया, कुछ रोटियाँ खिलाई और वह व्यक्ति मरने से बच गया। तब चिंदी के मन में विचार आया क्यों न अब दूसरों के लिए ही जिया जाए। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''यह जीवन क्षणस्थायी है, संसार के भोग-विलास की सामग्रियाँ भी क्षणभंगुर हैं। वे ही यथार्थ में जीवित हैं, जो दूसरों के लिए जीवन धारण करते हैं। बाकी लोगों का जीना तो मरने ही के बराबर है।''[१] अब चिंदी के जीवन में यह प्रेरणा आ गई थी। भीख मिलने पर जो कुछ धन जमा होता, उसे वह अपनी बच्ची के साथ रेलवे स्टेशन पर रहनेवाले अनाथ बच्चों को भी खिलाया करती थी। इसके पश्चात् वह आदिवासियों की बस्ती में झोपड़ी बनाकर उन अनाथ बच्चों का लालन-पालन करने लगी। अब उसके मन में यह विचार आने लगा कि यदि सब बच्चों को समान दृष्टि से देखना हो, तो अपने बच्चे का त्याग कर देना उचित है। चिंदी ने अपने जीवन का एक कठोर निर्णय लिया। तब उसने पुणे

की एक ट्रस्ट में अपनी बच्ची को दे दिया। अब अभंग, भजन आदि गाकर वह भीख माँगा करती और अनाथ बच्चों को पढ़ा-लिखाकर कुछ बनाने का महान प्रयास करने लगी। धीरे-धीरे इस कार्य ने एक संस्था का रूप ले लिया। कई वर्षों के बाद उसका पति वहाँ आया और क्षमा माँगी। तब चिंदी ने उससे कहा, 'अब मैं किसी की पत्नी नहीं हूँ। अब मैं मात्र माँ हूँ। यदि तुम मेरी सन्तान होकर रहना चाहते हो, तो यहाँ अवश्य रह सकते हो और उसके पति ने वहाँ रहना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् उसके जीवन पर आधारित फिल्म का निर्माण हुआ, जिससे उसे बहुत प्रसिद्धि मिली तथा कई राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुए। आज वही चिंदी 'सिंधुताई' अथवा 'अनाथों की माँ' के नाम से प्रसिद्ध है। उनका संघर्षमय जीवन प्रेरणा का स्रोत है। आइए हम इसी विषय 'संघर्ष' पर विचार करें –

संघर्ष की आवश्यकता

मूर्ति बनाने के लिए पत्थर को कितनी ही चोटें खानी पड़ती हैं और वे प्रत्येक चोटें उस मूर्ति के निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक होती हैं। तब कहीं वह पत्थर भगवान का रूप ले पाता है और तभी उसकी पूजा होती है। स्वयं के निर्माण के लिए भी ऐसे ही संघर्ष की आवश्यकता होती है। हमें विभिन्न प्रकार से निरन्तर संघर्ष करना ही पड़ता है, जैसे विषम परिस्थितियों के साथ, अपने संस्कारों के साथ, लक्ष्यप्राप्ति के लिए आदि-आदि। यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे परिवार में जन्म लेता है, जहाँ उसे धन-सम्मान आदि चीजें जन्मगत ही उपलब्ध हों, फिर भी उस व्यक्ति को उसे बनाए रखने के लिए अनवरत संघर्ष करना ही पड़ता है। ऐसे अनगिनत उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं, जब जन्मगत मिले हुए ऐश्वर्य को मात्र भोग करते हुए सारी सम्पदा नष्ट हो गई थी। वहीं एक गरीब व्यक्ति संघर्ष करते हुए ऐश्वर्यवान हो जाता है। जीवन में संघर्ष की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि संघर्ष ही जीवन का चिह्न होता है।

संघर्ष का महत्त्व

संघर्ष अनुभव का पिटारा खोल देता है। व्यक्ति संघर्ष करने पर ही अनुभवी और परिपक्व बनता है। जिस प्रकार बहता हुआ पानी पत्थरों और चट्टानों से ठोकरें खाकर गतिमान रहता है और पवित्र बना रहता है, वहीं स्थिर जल दूषित हो जाता है। उसी प्रकार संघर्ष व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करता है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, "चरित्र को एक विशिष्ट ढाँचे में ढालने में शुभ और अशुभ, दोनों का समान अंश रहता है और कभी-कभी तो दुख सुख से भी बड़ा शिक्षक हो जाता है। यदि हम संसार के महापुरुषों के चरित्र का अध्ययन करें, तो अधिकांश दृष्टान्तों में हम यही देखेंगे कि सुख की अपेक्षा दु:ख ने तथा सम्पत्ति की अपेक्षा दारिद्र्य ने ही उन्हें अधिक शिक्षा दी है एवं प्रशंसा की अपेक्षा आघातों ने ही उनकी अंत:स्थ अग्नि को अधिक प्रस्फुरित किया है।"[२]

संघर्ष और पुरुषार्थ

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, "किसान लोग बैल खरीदने जाते हैं, तो अच्छा बैल कैसे पहचानते हैं, जानते हो? इस बारे में वे बड़े जानकार होते हैं। वे बैल की पूँछ पर हाथ लगाकर देखते हैं, जिस बैल में दम नहीं होता, वह पूँछ पर हाथ लगाने से अंग ढीला कर जमीन में लेट जाता है। परन्तु जो बैल फुर्तीला, तेज होता है, वह पूँछ को छूते ही चिढ़कर उछलने लगता है। किसान लोग ऐसे ही बैल को खरीदते हैं। जीवन में सफलता प्राप्त करनी हो, तो अपने भीतर पुरुषत्व और वीरता रखनी चाहिए। कई लोग ऐसे होते हैं, जिनमें कोई दम ही नहीं होता - मानो दूध में भी खोया हुआ चिउड़ा हो, नरम और ठंडा! भीतर कोई जोर ही नहीं! उद्यम करने की सामर्थ्य नहीं! इच्छाशक्ति नहीं! ऐसे लोग जीवन में कभी सफल नहीं होते!"[३] वास्तव में पौरुष का भाव ही संघर्ष की शक्ति प्रदान करता है। इतिहास के पन्नों पर उन्हीं वीरों की गाथाएँ स्वर्णिम अक्षरों में लिखी गई हैं, जिन्होंने अपने पौरुष से संघर्षमय जीवन व्यतीत किया था। अत: हमें अपने पौरुष को जागृत करना चाहिए और यदि इसका अभाव हो, तो इसे उत्पन्न करना चाहिए। क्योंकि संघर्ष के लिए पौरुष की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

संघर्ष में कठिनाइयाँ

जिस प्रकार पहले खदान से पत्थर निकाले जाते हैं। फिर उन पत्थरों को गलाया जाता है। इसके पश्चात् उससे स्वर्ण निकलता है। फिर उस स्वर्ण को गलाकर, पीटकर और काटकर आभूषण बनाया जाता है और तभी वह सबका प्रिय बन पाता है। उसी प्रकार मनुष्य भी संघर्ष की कठिन यात्रा करते हुए सफल हो पाता है। किसी की सफलता पर ताली बजा देना या प्रशंसा कर देने में सम्भवत: थोड़ा ही समय लगता है। परन्तु उस सफलता के पीछे उस व्यक्ति का संघर्ष, उन परिस्थितियों के साथ जूझता हुआ उसका जीवन परीक्षा

की घड़ी में बीतता है। कभी-कभी तो उस संघर्ष के बीच सफलता और असफलता खेलती रहती है, तो कभी-कभी उस संघर्ष के पीछे सफलता और असफलता की दूरी बहुत अधिक नहीं होती। परन्तु संघर्ष की अपनी एक मिठास भी है, जो जीवन में आत्मसंतुष्टि प्रदान करता है।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''गत दस वर्षों से मैं अपना मूल मंत्र घोषित करता आया हूँ – संघर्ष करते रहो। और अब भी मैं कहता हूँ कि अविराम संघर्ष करते चलो। जब चारों ओर अंधकार ही अंधकार दीखता था, तब मैं कहता था – संघर्ष करते रहो, अब जब थोड़ा-थोड़ा प्रकाश दिखायी दे रहा है, तब भी मैं कहता हूँ कि संघर्ष करते चलो। डरो मत मेरे बच्चो! अनन्त नक्षत्र खचित आकाश की ओर भयभीत दृष्टि से ऐसे मत ताको, जैसेकि वह हमें कुचल ही डालेगा। धीरज धरो। देखोगे कि कुछ ही घंटों में वह सब-का-सब तुम्हारे पैरों तले आ गया है। धीरज धरो, न धन से काम होता है, न नाम से, न यश काम आता है, न विद्या; प्रेम ही से सब कुछ होता है। चरित्र ही कठिनाइयों की संगीन दीवारें तोड़कर अपना रास्ता बना सकता है।''[४]

संघर्ष की दिशा

दीवार से सिर टकराना भी एक संघर्ष कहा जा सकता है, परन्तु ऐसे संघर्ष से कभी सफलता नहीं मिलती। इसके लिए सही दिशा में संघर्ष करना आवश्यक है। अत: हमें स्थिति और समय को समझकर कुछ अनुभवों के साथ संघर्ष करना चाहिए। जिस प्रकार वृक्ष को तभी काटा जा सकता है, जब एक ही स्थान पर बारम्बार प्रहार किया जाए। उसी प्रकार संघर्ष के पीछे भी एक स्थिर लक्ष्य अवश्य ही निर्धारित होना चाहिए। लक्ष्यरहित संघर्ष से अथवा लक्ष्य को बारम्बार बदलते रहने से कभी सफलता नहीं मिल सकती।

''किसी व्यक्ति ने चौदह वर्ष तक निर्जन में कठिन साधना करने के पश्चात् जल पर चल सकने की सिद्धि प्राप्त की। सिद्धि प्राप्त कर वह अत्यन्त आह्लाद के साथ अपने गुरु के निकट पहुँचा और कहने लगा, 'गुरुजी! गुरुजी! मुझे पानी पर से चलकर नदी पार करने की सिद्धि मिली है।' गुरु ने उसका तिरस्कार करते हुए कहा, 'छी! छी! चौदह साल तपस्या कर आखिर तूने यही सीखा? यह तो धेले भर का काम है। चौदह साल की मेहनत के बाद तूने जो सीखा, वह काम तो लोग केवट को आधा पैसा देकर कर लेते हैं।''[५] कभी-कभी हम अनावश्यक कार्यों में अपना समय नष्ट कर देते हैं। अत: हमें चाहिए कि हमारे संघर्ष का उद्देश्य श्रेष्ठता की उपलब्धि हो।

संघर्ष का स्वरूप

संघर्ष एक सकारात्मक पहलू है। इसे हमें कभी नकारात्मक रूप से नहीं लेना चाहिए। बिना संघर्ष के कोई सफल नहीं होता। अत: सफलता के लिए कोई सरल मार्ग न खोजकर हमें संघर्ष में लग जाना चाहिए। निरन्तर संघर्ष से हमारी सफलता सबल सशक्त होती है। संघर्ष हमें शक्तिमान बनाता है। अन्तिम छोर तक लक्ष्य पाने का संघर्ष स्वयं में एक सफलता होती है। परन्तु हमें सफलता से नहीं, बल्कि संघर्ष से प्रेम होना चाहिए, क्योंकि संघर्ष ही आत्म-सन्तुष्टि प्रदान करता है। जिस प्रकार अग्नि में घी देने पर वह और भी प्रज्वलित हो उठती है, हमें भी उसी प्रकार संघर्ष करना चाहिए कि आनेवाली बाधाएँ हमें हतोत्साहित न करके हममें और भी उत्साह भर दे।

संघर्ष और सफलता

संघर्ष के पश्चात् मिलनेवाली सफलता का आनन्द सर्वाधिक होता है। संघर्ष करते-करते निराशा भी हो सकती है, ऐसे समय में धैर्य रखकर अपने काम में लगे रहने की आवश्यकता होती है। फल की चिन्ता से ही निराशा होती है। वास्तव में जब हम निराश होकर संघर्ष छोड़ देते हैं, तभी हम असफल हो जाते हैं। आत्मसन्तुष्टि तो संघर्ष से मिलती है, पुरस्कार या प्रसिद्धि से नहीं। एक सिपाही अपने राष्ट्र की सुरक्षा के लिए लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त करता है। परन्तु यदि वह अपने राष्ट्र को विजय नहीं दिला पाता, तो भी उसका वह संघर्ष अपने आप में पूर्ण सफलता है। उसके अन्तिम क्षण तक किए हुए संघर्ष से उसे आत्म-संतुष्टि मिलती है और वही उसकी सफलता होती है। कभी-कभी हम सफलता को पुरस्कार या प्रसिद्धि से जोड़ देते हैं, परन्तु आत्म-संतुष्टि से मिलनेवाली सफलता का मोल किसी पुरस्कार या प्रसिद्धि से नहीं आँका जा सकता। अन्तिम क्षणों तक संघर्ष करना चाहिए, यदि सफलता न भी मिले, तो संघर्ष करते-करते मरना श्रेष्ठ मृत्यु है। अन्ततोगत्वा सफलता उनके ही चरण स्पर्श करती है, जो संघर्ष करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द एक प्रेरणा

विश्व विजय करनेवाले स्वामी विवेकानन्द जी की उक्तियाँ ही नहीं, बल्कि उनका जीवन भी संघर्ष की प्रेरणा देता है।

शेष भाग पृष्ठ ४२६ पर

शान्त और सुखी रहने का सरल मार्ग

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

अपने जीवन में स्वच्छता, पवित्रता, स्वस्थता और व्यवहार में परहित भावना और सेवा, यह शान्ति से रहने का सरल मार्ग है। यदि व्यवहार में स्वार्थ आया, तो वह शत्रु के समान है। संसार-व्यवहार में जगत् का हित ही करना है। धर्म जीवन में आचरण करने के लिए है, उसे अपने व्यवहार में लाना है। धर्म यानि धारण करना। धर्म आचरण में लाने की वस्तु है। बिना सत्संग के धर्म अधिक दिन नहीं टिकता। हमारा जीवन ईश्वर केन्द्रित होना चाहिए। अपना मूल्य अपने गुणों से बढ़ता है। मनुष्य का मूल्य उसके अपने अच्छे गुणों पर ही निर्भर है। स्वयं हम झाँककर देखें कि हमारा जीवन दूसरों के उपयोग में है क्या? हमारे सम्पर्क में जो लोग आयेंगे और देखेंगे कि हममें कितने अच्छे गुण हैं, तो वे हमसे सीखेंगे। स्वार्थ से प्रेरित होकर काम करना भक्त के लिये अच्छा नहीं है। इसलिये हम दूसरों की सहायता करें। इससे हमारी चित्तशुद्धि होगी। जब आप सत्संग करेंगे, अच्छा आचरण करेंगे, तो आपको भी अच्छे लोग मिलेंगे।

इस संसार में एक बात हमें ध्यान में रखना चाहिए कि यह संसार परिवर्तनशील है, हम भी परिवर्तनशील हैं, मात्र हमको देखनेवाला ईश्वर ही अपरिवर्तनशील है। इस संसार में भगवान हमारा पूरा व्यवहार देखते हैं कि हम दूसरों के साथ क्या व्यवहार कर रहे हैं। जीवन का यह परम सत्य है कि संसार की सभी वस्तु परिवर्तनशील है, इसलिए मन को सम्भालकर रखना चाहिए। आवश्यक सांसारिक व्यवहार करें, किन्तु मन में संसार न रहे। संसार में हमारा मूल्य एक बूँद की तरह है, लेकिन जब हम अच्छे गुणों को धारण करेंगे, तभी हमारा मूल्य बढ़ेगा।

यदि हमारे जीवन में सरलता होगी, हमारा खान-पान सादा रहेगा, तो हम बहुत शान्ति से रहेंगे। जगत् व्यवहार करो, पर अपने जीवन में भगवान को ही सब कुछ समझो। अपने शरीर का उपयोग भगवान और उनकी सन्तानों की सेवा के लिये करना है। हमें असत् कर्म को छोड़कर सत्कर्म करना है। सन्त-महात्मा हमलोगों को गुरु भगवान की कथा सुनाते हैं, अच्छी शिक्षा देते हैं, परन्तु हम उसको धारण नहीं करते, उसे हम मन में नहीं रख पाते, उसे एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं, इसलिये हमारा कुछ नहीं होता, हमारे जीवन में परिवर्तन नहीं होता। हमें भगवान की लीलाओं का चिन्तन-मनन करना चाहिए। उसकी धारणा करनी चाहिए। भगवान की उपासना के साथ-साथ दूसरों का ध्यान रखना चाहिए। हमेशा यह देखना चाहिए कि मेरा जीवन दूसरों के लिये भी कितना उपयोगी है। यह हमारी उपासना ही है। इससे जीवन में शान्ति आयेगी। हमें नि:स्वार्थ होना चाहिए। नि:स्वार्थता से व्यक्ति का जीवन फूलों के जैसा सुगन्धित हो जाता है। स्वार्थ से व्यक्ति का जीवन संकुचित हो जाता है। वह केवल अपना लाभ देखता है। जो अपना, अपने परिवार का और अपने आस-पड़ोस का ध्यान रखता है, वह जीवनभर सुखी रहता है। दूसरों के लिये अपने स्वार्थ-त्याग से सुख मिलेगा। त्याग माने दूसरों की सेवा में सहायक होना। जो उन्नत-चरित्र के लोग हैं, जो बड़े-बड़े महापुरुष हैं, उनको जड़-चेतन में सभी जगह ईश्वर ही दिखता है। जब तक शरीर सक्षम है, तब तक सेवा करें और धर्मयुक्त जीवन यापन करें। धर्म दैनिक जीवन में संयमित सदाचरण करने के लिये ही है।

संयमित जीवन सुखी होता है। संयमित जीवन भगवान से प्रेम करने में सहायक होता है। यह संसार बहुत जटिल और कठिन है। इससे सुरक्षा के लिए भगवान का नाम ही प्रमुख है। मन यदि भगवान में न लगे, तो उसे समझाना चाहिए, कभी-कभी डाँटना भी चाहिए। मन पवित्र होने से वह भगवान की ओर जाता है। मानसिक पवित्रता सत्संग से आती है, भगवान के नाम से आती है। सत्संग कैसे होना चाहिए? सत्संग की बातें सुनकर हमको उसे हमेशा के लिए स्मरण रखना चाहिए, उसकी धारणा करनी चाहिए। जैसे हथौड़ी से पत्थर पर हम प्रहार करते हैं, तो वह प्रहार हमेशा के लिये रहता है, कभी मिटता नहीं है, वैसे ही सत्संग को भी हमें कभी भूलना नहीं चाहिए और जप करते-करते दिनभर का सब काम करना चाहिये। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (५७)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज! गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है –

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्य च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।
(गीता ४/१७)

क्या यहाँ 'अकर्म' का तात्पर्य निष्काम कर्म है?

महाराज – कर्म के सम्बन्ध में समझना होगा। कर्म अर्थात् शास्त्रविहित कर्म। विकर्म हुआ निषिद्ध कर्म। अकर्म हुआ कर्तृत्वबोध रहित कर्म (कर्तापन रहित कर्म) अर्थात् अपने को अकर्ता समझकर कर्म करना। निष्काम कर्म में कर्तापन, कर्ताभाव रहता है, किन्तु कर्मफल की आकांक्षा नहीं रहती।

– अच्छा महाराज! क्या कर्ताभावरहित कर्म होता है?

महाराज – ठीक कह रहे हो। बिना कर्ताभाव के कर्म नहीं होता है। इसीलिए अकर्म को कर्माभास कहते हैं – जैसे कर्म हो रहा है **'नैव किञ्चित् करोमीति'** (गीता (५/८)। आत्मा कोई कर्म नहीं करती है। मैं आत्मा हूँ – इस प्रकार अपने को जानकर यह कर्म, वह कर्म, ऐसा कर्म, जैसा कर्म, प्रकृत कर्म नहीं हो रहा है।

– महाराज! इस अकर्मभाव को तो हमलोग निष्काम कर्म करते समय भी अभ्यास कर सकते हैं?

महाराज – वही करना। तत्त्वतः अपने को अकर्ता समझ कर कार्य करना होगा। उसका व्यावहारिक रूप हुआ – फल की कामना नहीं करना।

– महाराज! मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, अर्थात् ठाकुर कर रहे हैं?

महाराज – फिर से ठाकुर को क्यों ला रहे हो? आत्मा अकर्ता है।

– गुणों के कारण कर्म हो रहा है।

महाराज – **गुणा गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते** (गीता ३/२८)। इन्द्रियाँ गुण हैं और विषय भी गुण हैं। इनके सम्मिश्रण से ही कर्म हो रहा है। आत्मा इससे पृथक् है। आत्मा अकर्ता है। अपने को ऐसा जानकर जो कर्म होता है, इसलिए वह अकर्म है।

– महाराज, क्या इस अकर्म अवस्था को ही कर्म में अकर्म का दर्शन कहा गया है? बाद के श्लोक में कहा गया है –

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत।।
(गीता ४/१८)

महाराज – कर्तृत्व बोधरहित जो कर्म है, वह तात्कालिक दृष्टि से कर्म प्रतीत होने पर भी, वह कर्म नहीं है, अर्थात् अकर्म है। उसी प्रकार तात्कालिक दृष्टि से कर्म में जो अकर्म देखते हैं, अर्थात् उस प्रकार के कर्म को कर्म नहीं देख रहे हैं और जो अकर्म में कर्म देखते हैं, वे ही बुद्धिमान हैं। अकर्म में कर्म-दर्शन हुआ – (महाराज ने आँखें बन्द कर हाथ को समेटकर दिखाया।) मौन हो बैठकर हमलोग सोचते हैं, मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ। मानो यह अकर्म है। किन्तु वास्तव में इस प्रकार मौन होकर बैठे रहना भी कर्म है। शांकर भाष्य में इस विषय में स्पष्ट कहा गया है। क्या, तुम लोग भाष्य नहीं देखते हो?

– नहीं महाराज, भाष्य देखते हैं। फिर भी आपसे सुनकर और अधिक स्पष्ट कर लेते हैं।

महाराज – वह कर लो, किन्तु स्पष्ट हो रहा है क्या?

– हाँ महाराज! अब स्पष्ट है।

महाराज – वाह! तुमलोग तो तुरन्त ही ठीक से समझ जाते हो। (सभी हँसते हैं।)

(३४)

प्रश्न – महाराज! आप लोग जब मठ में थे, तब शास्त्र-चर्चा कैसे करते थे, इस सम्बन्ध में थोड़ा बताइये।

महाराज – मठ में हमलोग कई लोग एक साथ पढ़ते थे। दोपहर में सबको बिस्तर से खींचकर ले आकर पढ़ने के लिये बैठाता था। यह दायित्व हमारा था। उसके बाद धीरे-धीरे लोग खिसकने लगे। अन्त में हम दो-तीन लोग ही बच गये। इनमें अनंग महाराज (स्वामी ओंकारानन्दजी) थे। वे मेरे साथ न्याय पढ़ते थे। व्याप्ति प्रकरण पढ़ना हुआ। मैंने कहा – मैं अब नहीं पढ़ूँगा। उन्होंने पूछा – क्यों? मैंने कहा – न्याय पढ़ने में १२ वर्ष लगता है। क्या आप मुझे गारण्टी दे सकते हैं कि मैं बेलूड़ मठ में १२ वर्ष रहूँगा? महाराज ने हँस दिया। जो भी हो, वे मेरे साथ पढ़ना चाहते थे। एक व्यक्ति साथ में नहीं रहने से किसके साथ तर्क करोगे, किसके साथ विषय की चर्चा करोगे? हमलोगों को तारासार पंडितजी पढ़ाते थे। बह्मसूत्र बहुत अच्छे से पढ़ाते थे। उनके पास अपनी कोई पुस्तक नहीं थी। सभी पुस्तकालय की पुस्तकें थीं। उसमें ही चिन्हित करते थे और उससे ही नोट बनाते थे। बाद में एक बार अनंग महाराज ने कहा था – "तुम्हारी पुस्तकें और मेरी पुस्तके अभी कहाँ है, कौन जानता है! एक बार मठ से कहीं गया था। शास्त्र की पुस्तकें कपड़े में बाँधकर कमरे में रख दिया था। कमरा साफ करते समय कौन उन्हें खोलकर पुस्तकालय में दे दिया।" उसके बाद 'मैसूर स्टडी सर्कल' में अच्छी पढ़ाई हुई। मद्रास में आने पर भी वह क्रम ठीक था। हम कई लोग एक साथ बैठकर पढ़ते थे। छात्रों में थे – स्वामी तपस्यानन्द, स्वामी रंगनाथानन्द और भी अन्य कई लोग थे। ब्रह्मसूत्र पढ़ता था। भामती टीका बहुत अच्छी लगती थी। वहाँ भी धीरे-धीरे संख्या कम होने लगी।

प्रश्न – महाराज ! ठाकुर ने कहा है – अद्वैत अन्तिम बात है। इसका क्या अर्थ है ?

महाराज – अद्वैत अन्तिम बात है – अर्थात् उसके बाद कोई बात नहीं होती। अर्थात् और बोला-कहा नहीं जाता। एकत्व-अनुभूति का यह अर्थ नहीं होता है कि अद्वैत ही चूड़ान्त है, चरम है।

– हाँ महाराज! हमलोग तो वैसा ही सोचते हैं।

महाराज – इस सम्बन्ध में हमलोगों की बड़ी भ्रान्त धारणा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि ठाकुर ने अद्वैत को सर्वोच्च कहा है। यदि ठाकुर यह बात कहते हैं, तो उनका सर्वधर्म-मत-समन्वय, सर्वधर्म-मत सत्य है इत्यादि बातें युक्तिसंगत नहीं रहेंगी। वे केवल अद्वैती होकर रह जायेंगे। वे जैसे अद्वैत को सत्य कहते हैं, वैसे ही द्वैत और विशिष्टाद्वैत को भी सत्य कहते हैं। उन्होंने सभी प्रकार के भावों में साधना करके सभी पंथों के सत्य की उपलब्धि की है। अद्वैत को चूड़ान्त, सर्वोच्च कहने से अन्य सभी मतों को छोटा करना हो जायेगा। ठाकुर का ऐसा अभिप्राय नहीं है, इसके लिये ठाकुर नहीं आये। सभी सम्प्रदायों-मतों की सत्यता एवं समन्वय ही ठाकुर का आदर्श है।

– किन्तु महाराज! श्रीमाँ ने तो कहा है कि ठाकुर अद्वैती थे। तुमलोग उनकी सन्तान हो। तुमलोग भी अद्वैती हो।

महाराज – श्रीमाँ ने यह वचन किसी व्यक्ति-विशेष को एक विशेष घटना के परिप्रेक्ष्य में कहा था। उनकी इस वाणी के द्वारा ठाकुर के दर्शन या ठाकुर के भाव को सीमित नहीं किया जा सकेगा। क्या ठाकुर केवल अद्वैती ही थे? द्वैती नहीं थे। श्रीमाँ ने अद्वैत आश्रम में पूजा बंद करने को कहा था। उन्होंने उद्बोधन के ठाकुर-मन्दिर को हटाने को तो नहीं कहा! (सभी हँसते हैं) ठाकुर ने कहा है – ईश्वर की इति नहीं की जा सकती, उनके अनन्त भाव हैं, अनन्त अनुभूतियाँ, उपलब्धियाँ हैं। जिसका जैसा भाव है, उसे वैसी ही अनुभूति होती है। ठाकुर के इन बातों का ध्यान रखना। केवल एकाध बातों को लेकर विचार करने से मूल सत्य को हमलोग ग्रहण नहीं कर सकेंगे। **(क्रमशः)**

भजन

जय गणेश गणनायक स्वामी

डॉ. ओम प्रकाश वर्मा, रायपुर

जय गणेश गणनायक स्वामी ध्यानपरायण अन्तर्यामी
विद्यावारिधि बुद्धिविधाता, विमलकांतिधन सब सुखदाता।
सुरगणपूजित विघ्नविनाशक लंबोदर तुम भव-भयनाशक,
सिद्धिप्रदायक गौरीनंदन, सकल देवता करते वंदन।
कार्तिकेय के तुम प्रिय भ्राता, मोदक प्रिय तुम मंगलदाता,
सब जगजन के भाग्यविधाता, कृपा करो तुम हे जगत्राता।
भालचंद्रयुत मूरति सुन्दर, दैत्यविमर्दक विमल कीर्तिधर,
रत्नसिंहासनयुतश्रीधारी, दूर करो मम सब दुख भारी।।

श्रीभगवान की सेवा-लीला

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

प्रा. दूधाधारी संस्कृत महाविद्यालय और बालिका महाविद्यालय, रायपुर

कौतुक प्रिय भगवान की लीलाएँ अनन्त हैं। अन्य समस्त प्रकार की लीलाओं में सेवा-लीला उन्हें परम प्रिय है। देवताओं, मनुष्यों, गोवंश और पृथ्वी की रक्षा के लिए तो वे अवतार ग्रहण करते ही हैं, किन्तु जिस भक्त के प्रेम-भाव पर रीझ गए, उसकी सेवा का अवसर बिल्कुल नहीं चूकते।

ये श्रीभगवान् जो कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं, समस्त जीवों के योगक्षेम वहन करते हैं, पालन-पोषण करते हैं किन्तु ये स्वयं भाव के भूखे हैं। जहाँ कहीं प्रेम देखते हैं, सारे नियमों को भूलकर, मर्यादाएँ तोड़कर हमारे ये स्वामी अपने प्रेमी सेवकों के सेवक बन जाते हैं।

प्रेमी भक्तों को भगवान् की सेवा करने में आनन्द का अनुभव होता है, किन्तु भगवान् को अपने भक्तों की सेवा करने में उससे भी अधिक आनन्द की अनुभूति होती है। इसीलिए तो सृष्टि के आरम्भ से अभी कलिकाल तक वे समय-समय पर अपने भक्तों पर सेवा का अनुग्रह-वर्षण करते रहे हैं।

मनु-शतरूपा ने प्रभु-दर्शन की इच्छा से हजारों वर्षों तक कठोर तप किया और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप करते रहे। अन्त में प्रसन्न होकर भगवान् उनके सम्मुख प्रकट हो गए। भगवान् के कहने पर मनु-शतरूपा ने अपनी इच्छा व्यक्त की – 'भगवन्! हम आपके ही समान एक पुत्र की कामना करते हैं।'

भगवान् ने कहा – 'अब मैं अपने समान पुत्र की खोज करने भला कहाँ जाऊँ, इसलिए मैं ही आपके अगले जन्म में पुत्र बनकर जन्म लूँगा।' निर्गुण-निराकार भगवान् ने मनु-शतरूपा के अगले जन्म में श्रीराम के रूप में पुत्र बनकर अपनी सेवा से उन्हें पुरस्कृत किया।

इसी प्रकार देवकी-वसुदेव की कठिन तपस्या से द्रवित भगवान् ने तीन जन्मों तक उनका पुत्र बनना स्वीकार किया और तीसरे जन्म में वे श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित हुए। भगवान् का श्रीकृष्णावतार का उद्देश्य तो मानो सेवा ही था। एक ओर भगवान् ने हमारे समक्ष गोवंश की सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया और दूसरी ओर पाण्डवों की विपत्ति में सब तरह से सहयोग किया। अर्जुन के लिए तो वे केवल युद्ध-क्षेत्र ही नहीं, जीवन भर के लिए सारथी का कार्य सम्पन्न करते रहे। पाण्डवों के यज्ञ में जूठे पत्तल उठाने का कार्य तो भगवान् की सेवा-लीला की पराकाष्ठा है।

गोस्वामी तुलसीदास श्रीराम के अनन्य भक्त हुए। काशीवास के समय एक दिन भगवान् शिव और माता पार्वती ने उन्हें दर्शन दिए और शिवजी ने उनसे कहा – 'पुत्र! तुम अयोध्या जाकर निवास करो और वहीं काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी।' गोस्वामीजी प्रभु की आज्ञा से अयोध्या चले आए और वहीं श्रीरामचरितमानस की रचना की।

इसके पश्चात् प्रभु की आज्ञा से वे पुनः काशी आ गए। वहाँ उन्होंने भगवान् विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को रामचरितमानस सुनाया और रात में मानस की प्रति विश्वनाथ मन्दिर में रख दी गई। सवेरे जब पट खुला तब मानस पर लिखा था – 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम् ' और नीचे भगवान शंकर का हस्ताक्षर था। वहाँ उपस्थित जनसमूह ने उस समय 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' की आवाज भी सुनी।

ऐसी शिव-कृपा गोस्वामीजी के लिए परम सौभाग्य की बात थी, किन्तु काशी के पण्डितों को उनसे ईर्ष्या होने लगी। उन लोगों ने मानस की प्रति चुराने की योजना बनाई और इसे सम्पन्न करने के लिए दो चोरों को नियुक्त किया। दोनों चोर आधी रात के समय मानस चुराने गोस्वामीजी की कुटिया के समीप पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि दो सुन्दर धनुर्धर युवक कुटिया के बाहर टहलते हुए रक्षा-कार्य में डटे हुए हैं। यह दृश्य देखकर चोरों का हृदय-परिवर्तन हो गया और वे चोरी छोड़कर भगवद्भजन में लग गए। बाद में यह सब वृत्तान्त जानकर गोस्वामीजी अत्यन्त दुखी हुए कि उनके लिए भगवान् को कष्ट उठाना पड़ा। परन्तु सच तो यही था कि गोस्वामीजी राम-लखन के शरणागत थे और श्रीराम-लखन ने अपने भक्त को पहरेदारी की सेवा से कृतार्थ किया।

महाकवि विद्यापति शिवजी के समर्पित भक्त थे। माता गंगा का सेवन और भगवान् शिव का भजन-पूजन ही उनके जीवन का ध्येय था। एक दिन उगना नामक एक आदमी

उनके घर पहुँचा और अपने यहाँ सेवक रख लेने का हठ करने लगा। विद्यापति बार-बार उससे कहते रहे कि मेरे पास इतनी सामर्थ्य नहीं है कि मैं तुम्हें कुछ वेतन दे सकूँगा। किन्तु वह हठपूर्वक कहता रहा कि उसे वेतन नहीं चाहिए, केवल दो समय के भोजन में सन्तुष्ट रहते हुए ही वह उनके घर के सारे काम करता रहेगा। विद्यापति की पत्नी भी उगना को रखने का आग्रह करने लगीं। अन्ततः विद्यापति ने अपनी स्वीकृति दे दी और उगना घर में सेवक के पद पर प्रतिष्ठित हो गया।

एक दिन विद्यापति कहीं दूर की यात्रा पर जा रहे थे। उनके साथ में सेवक उगना भी था। राह चलते-चलते विद्यापति का कण्ठ सूखने लगा और उन्हें प्यास सताने लगी। परन्तु दूर-दूर तक जल-प्राप्ति का कोई स्रोत या साधन दिखलाई नहीं पड़ रहा था। उन्होंने बहुत थके स्वर में उगना से कहा – 'उगना, जल्दी से जल्दी मुझे कहीं से जल लाकर पिलाओ। थोड़ी देर में अगर जल नहीं मिला, तो मैं अब जी नहीं सकूँगा।'

उगना लोटा लेकर तेजी से जल की खोज में निकल पड़ा। थोड़ी देर बाद वह जल लेकर लौटा और प्यास से तड़प रहे विद्यापति उसके हाथ से लोटा लेकर जल पीने लगे। लेकिन एक-दो घूँट जल पीते ही वे रुक गए। अत्यन्त विस्मय से उगना की ओर देखते हुए उन्होंने पूछा – 'उगना, यह जल तुम कहाँ से ले आए ? यह तो गंगाजल है।' उगना ने उन्हें काफी समझाया कि यह गंगाजल नहीं, सामान्य जल है। किन्तु विद्यापति गंगाजल से भली-भाँति परिचित थे। वे वहीं बैठ गए और उगना से जल की वास्तविकता बताने का हठ करते हुए पूछने लगे – 'इस स्थान में गंगाजल कैसे सुलभ हो सकता है? यह जल लानेवाले तुम कोई सामान्य मनुष्य नहीं हो सकते। जब तक तुम अपना सही परिचय मुझे नहीं बताओगे, तब तक मैं यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगा।'

विद्यापति की हठ के आगे उगना हार गया और उगना के स्थान पर साक्षात् भगवान् देवाधिदेव शिव प्रकट हो गए। मुस्कुराते हुए शिवजी ने कहा, 'यहाँ आस-पास कहीं जल नहीं मिला और तुम प्यास से तड़प रहे थे, इसलिए मैंने अपनी जटाओं से गंगाजल लाकर तुम्हें दे दिया।'

विद्यापति शिवजी के चरणों पर गिर पड़े। रोते हुए उन्होंने कहा 'प्रभो, आप मेरे स्वामी हैं। आपसे अपने कार्य करवाकर मैंने घोर पाप किया है। मैं तो अक्षम्य अपराधी हूँ।'

भोलेनाथ ने हँसते हुए कहा, 'नहीं विद्यापति! तुमने कोई अपराध नहीं किया है। तुम्हारे भावों पर मुग्ध होकर मैंने स्वेच्छा से तुम्हारे साथ रहने के लिए यह स्वांग रचा है। लेकिन अब तुमने मुझे जान लिया, इसलिए तुम्हारा साथ छोड़कर जाना पड़ेगा।'

विद्यापति आर्त्त स्वर में प्रार्थना करने लगे - ''नहीं भगवन्! आप कृपा-भाव बनाये रखिए। मुझे छोड़कर मत जाइये। आपके बिना मैं रह नहीं सकूँगा।'' शिवजी ने इस शर्त पर साथ रहना स्वीकार किया कि विद्यापति उनकी सच्चाई किसी के सामने प्रकट नहीं करेंगे। किन्तु दैववशात् कुछ दिनों पश्चात् विद्यापति की पत्नी किसी कारणवश क्रोध में आकर उगना को झाड़ू से मारने लगीं और यह देखकर दौड़ते हुए विद्यापति ने आकर पत्नी को रोकते हुए कहा, 'क्या कर रही हो? ये भगवान् शिव हैं।' यह सुनते ही उगना बने शिवजी वहाँ से अन्तर्धान हो गए। अब विद्यापति को अपनी भूल का ध्यान आया। वे पश्चात्ताप और विलाप करने लगे। इस प्रसंग का उनका करुण गीत है – 'उगना रे मोर कत गेल।' (हे मेरे उगना, तुम कहाँ चले गए।) विद्यापति आजीवन उगना-उगना रटते रहे और भगवान् शिव ने चाकरी करके इन्हें सौभाग्यवान् भक्तों के बीच अमर कर दिया।

इसी तरह महाराष्ट्र के एकनाथ भगवान् श्रीकृष्ण के अनूठे भक्त हुए। वे भक्ति और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति थे। एक बार द्वारिका से एक ब्राह्मण उनसे मिलने उनके ग्राम पैठण पहुँचे। खोजते-पूछते घर पधारने पर एकनाथजी ने उनका यथोचित सत्कार किया।

ब्राह्मण ने बार-बार हाथ जोड़ते हुए पुलकित होकर एकनाथ से कहा, 'अहा, आज आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया। आप धन्य हैं और धन्य है आपकी कृष्णभक्ति, जो भगवान् ने आप पर अपनी ऐसी अद्भुत कृपा बना रखी है! परन्तु अब आप अपने सेवक श्रीखंडिया के दर्शन करवाकर मेरा जीवन भी कृतार्थ करें।'

एकनाथ ब्राह्मण की बातें समझ नहीं पा रहे थे। उन्होंने कहा, 'हाँ, श्रीखंडिया पानी लाने बाहर गया है, अभी आता ही होगा। लेकिन अपनी ऐसी उत्कण्ठा का कारण बतलाने की कृपा करें।'

ब्राह्मण ने कहा, 'एकनाथजी, मैं वर्षों से प्रभु श्रीकृष्ण की उपासना कर रहा हूँ। मेरे मन में उनके मधुर दर्शन की तीव्र लालसा रही है। पिछले दिनों भगवान् ने कृपापूर्वक

स्वप्न में यह बतलाया कि अभी मैं तुम्हें द्वारिका में दर्शन नहीं दे सकता। अगर मनुष्य रूप में तुम मेरे दर्शन करना चाहते हो, तो पैठण गाँव जाओ। वहाँ मेरा अत्यन्त प्रिय भक्त एकनाथ निवास करता है। मैं विगत बारह वर्षों से श्रीखंडिया के रूप में उसके घर पर सेवक का कार्य कर रहा हूँ। भगवान् के इसी स्वप्न-निर्देश के कारण मैं आपके यहाँ आया हूँ और श्रीखंडियाजी को देखकर इन आँखों को सफल कर लेना चाहता हूँ।'

यह सुनकर एकनाथ अवाक् रह गए। श्रीखंडिया के पानी लेकर लौटने की प्रतीक्षा होती रही, लेकिन न उसे आना था और न ही वह लौटकर आया। परन्तु इस घटना से विदित हो गया कि भक्तप्रेमी भगवान् नटनागर गुप्त रूप से बारह वर्षों तक एकनाथ के गृहसेवक की लीला सम्पन्न कर गए।

इस भक्त-सेवा के क्रम में भक्तप्रवर नरसी मेहता का नाम अविस्मरणीय है। नरसी का चित्त बाल्यकाल से ही भगवान् में लगा रहता था। उनकी दृढ़ भक्ति को देखकर भगवान् शिव स्वयं प्रकट हुए और उन्हें अपने साथ ले जाकर रास-लीला दिखलाया और भगवान् श्रीकृष्ण से भेंट-वार्ता करवायी। भगवान् श्रीकृष्ण ने नरसी को भरपूर स्नेह देकर पुन: सांसारिक जीवन की प्रेरणा के साथ विदा किया।

नरसी पूरी तरह श्रीकृष्ण पर आश्रित थे। उनका एकमात्र कार्य भगवद्भजन ही था। इसीलिए पुत्री के विवाह में नरसी तो निश्चिन्त थे, परन्तु प्रभु श्रीकृष्ण को ही अपने भक्त के लिए सेठजी बनकर धन आदि सारी सामग्री जुटानी पड़ी और विवाह सम्पन्न कराना पड़ा। इसी प्रकार पुत्र के विवाह में भी नरसी को श्रीकृष्ण का आवश्यक सहयोग मिला।

एक बार पिता के श्राद्ध में नरसी को अपनी जातिवालों को भोजन कराने का भार सामने आया। भगवान् की कृपा से सारी सामग्री उपलब्ध हो गई। लोग भोजन कर रहे थे। अन्त में कुछ घी की कमी होते देखकर नरसी को बाजार भेजा गया। किन्तु रास्ते में उन्हें कीर्तन करती हुई सन्त मण्डली मिल गई और सब कुछ भूलकर नरसी उनके साथ भजन में व्यस्त हो गए। घर में ब्राह्मण भोजन कर रहे थे और घी समाप्त होनेवाला था। अन्त में देर होते देखकर भगवान् को नरसी का रूप धारण कर घी पहुँचाना पड़ा।

श्यामल शाह के नाम लिखी हुई हुण्डी हो, या गिरवी से केदार राग छुड़ाना हो अथवा भगवान् की प्रतिमा द्वारा गले में माला डालनी हो, निश्छल नरसी के प्रत्येक कार्य को सम्पन्न करने में भगवान् सदा तत्पर रहे। नरसी पर भगवान् की अहैतुकी परम करुणा देखकर यह समझना बड़ा कठिन प्रतीत होता है कि सेवक भक्त है या भगवान् हैं।

प्रसिद्ध भक्तों के जीवन से सम्बन्धित उपर्युक्त प्रसंग तो वास्तव में श्रीभगवान् की सेवा-लीला की अत्यन्त संक्षिप्त झलक है। जिनके नामोल्लेख यहाँ नहीं हुए अथवा जिनके विषय में हमें जानकारी भी नहीं है, ऐसे लाखों-करोड़ों भक्त हुए हैं, जिन्हें भगवान् ने अपनी सेवा से कृतार्थ किया है। कभी किसी दास की तात्कालिक सेवा की हो या चिरकालिक, किसी की छोटे कार्य में सेवा की हो अथवा किसी की महान् विपत्तिकाल में, किसी की प्रत्यक्ष सेवी की हो या किसी की अप्रत्यक्ष, किसी को उनके सेवा-अनुग्रह का बोध हुआ हो या कोई बोधहीन ही हो, परन्तु उनकी सेवा से वंचित तो शायद ही कोई भक्त होगा।

श्रीभगवान् कभी किसी दास के बदले स्वयं उपस्थित हुए, कभी किसी को कूप में गिरने से बचाया, कभी किसी की बेटी का रूप धारणकर छप्पर बाँधने का कार्य करवाया, कभी किसी भूखे भक्त के लिए बालकरूप में स्वादिष्ट दूध-खीर ले जाकर खिलाया और पता नहीं कौन-कौन-सी सेवा की लीलाएँ सम्पन्न की। उनकी तरह ही उनकी सेवा-लीला भी अनन्त है। हाँ, अपनी इस अद्भुत सेवा-लीला के माध्यम से कदाचित् सर्वथा स्वतन्त्र ब्रह्माण्डस्वामी भगवान् को यही प्रदर्शित करना अभीष्ट होता है कि वे अपने भृत्यों के वशीभूत हैं – **'एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता।**
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे।।'

(भागवतपुराण-१०-९-१९)

भगवान् ने स्पष्टत: घोषित कर रखा है कि मेरे प्रेमी अपनी भक्ति से मुझे वश में कर लेते हैं – **'वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या'**। वस्तुत: भक्तों की देख-रेख और सेवा के बिना भगवान् नहीं रह सकते। अपने स्वभाव के सम्बन्ध में भगवान् स्वयं कहते हैं कि साधु भक्त मेरे हृदय हैं और साधु भक्तों का मैं हृदय हूँ। मेरे अतिरिक्त वे और कुछ नहीं जानते तथा उनके अतिरिक्त मैं भी कुछ नहीं जानता –

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।।

(भागवतपुराण-९-४-६८)

○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३३)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

स्वामीजी का गुप्तदान

वराहनगर विधवा-आश्रम के संस्थापक शशिपद वन्द्योपाध्याय घूमते-फिरते कभी-कभी मठ में भी आ जाते थे। वे स्वामीजी पर चर्चा करते और उनके समाचार भी ले जाते। मैं भी शशिबाबू का आश्रम देख आता। उनके आश्रम में बहुत-सी विधवाएँ लिखना-पढ़ना तथा अन्य गृहकार्य किया करती थीं। आश्रम में ही बालिकाओं का एक स्कूल था और विधवाएँ ही उन्हें शिक्षा दिया करती थीं। इन सभी दुर्दशाग्रस्त परिवारों की बात स्वामीजी के करुणामय चित्त में अंकित थी, अत: वे अमेरिका से उन लोगों के लिये आर्थिक सहायता भेजा करते थे। इसी प्रकार एक गृहस्थ को, अपना बन्धक पड़ा घर छुड़ाने हेतु उनसे हजार से भी अधिक रुपये प्राप्त हुए थे। ऐसी अनेक लोक-हितकर संस्थाओं को वे बीच-बीच में सहायता भेजा करते थे।

वराहनगर के विधवाश्रम के लिये शशिबाबू को भी कुछ भेजना वे नहीं भूले थे। उदार असाम्प्रदायिक स्वामीजी से इस प्रकार की स्वाभाविक सहायता पाकर लोग कैसे आनन्दित होते थे, इसका यथेष्ट परिचय हमें शशिबाबू में देखने को मिला था। इस प्रकार स्वामीजी – कितने रुपये भेजकर कितने लोगों का उपकार किया करते थे, यह बात सभी लोग नहीं जानते। एक दिन हमने शशिबाबू के मुख से सुना कि उनके पास राजा राममोहन राय के केश तथा यज्ञोपवीत हैं। मैंने उनके आश्रम में जाकर राजा के चित्र में उनके सिर पर जैसे केश दिखते हैं, उसी तरह के केशों का एक गुच्छा और यज्ञोपवीत देखा तथा स्पर्श किया था। विपिनचन्द्र पाल के साथ मेरा प्रथम परिचय उसी आश्रम में हुआ था।

डॉक्टर टर्नबुल

इन्हीं दिनों ठाकुर के भक्त तथा स्वामीजी के मित्र हरमोहन मित्र – डॉक्टर टर्नबुल (Dr. Turnbull) नामक एक अमेरिकी सज्जन को आलमबाजार मठ में ले आये। हरमोहन ने ही पहले – 'प्रकाशक, एस. सी. मित्र' के छद्मनाम से स्वामीजी की 'शिकागो वक्तृता' तथा उनके और भी कई व्याख्यानों का पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशन किया था। उनका विज्ञापन देखकर टर्नबुल साहब – नयनचाँद दत्त स्ट्रीट में स्थित हरमोहन के आवास पर उन पुस्तिकाओं को खरीदने गये और उनसे अनुरोध किया कि वे उन्हें मठ में भी ले जाएँ। हरमोहन उन्हें साथ लेकर मठ में आये। हम लोग मंत्रमुग्ध होकर उनके मुख से – शिकागो की धर्म-महासभा में स्वामीजी के व्याख्यान का विवरण तथा और भी अनेक बातें सुनने लगे।

पहले दिन टर्नबुल साहब ने मठ में तीन-चार घण्टे बिताये और हम लोगों के साथ बातचीत करके बड़े प्रसन्न हुए। वे कलकत्ते के एक होटल में ठहरे थे, परन्तु उनकी इच्छा थी कि मठ के पास ही कहीं निवास करें। मैंने अरियादह के राय प्रसन्न वन्द्योपाध्याय बहादुर के उद्यान-भवन में उनके ठहरने की व्यवस्था कर दी। एक छोटा रास्ता था, जिससे होकर मठ से शीघ्र ही उस उद्यान तक पहुँचा जा सकता था।

उद्यान-भवन में जाने पर टर्नबुल साहब मुझे लांगफेलो (Longfellow) की कविताएँ पढ़कर सुनाते और मैं उन्हें रामकृष्ण भण्डारकर का लिखा हुआ संस्कृत व्याकरण पढ़ाता।

अनुमानत: यह स्वामीजी के भारत लौटने के दो-तीन महीने पूर्व की बात है। साहब ने कहा कि स्वामीजी के भारत लौट आने के बाद वे अपने देश लौट जाएँगे। वे प्रतिदिन उद्यान-भवन से दस बजे के बाद मठ में आकर भोजन आदि करते और संध्या की आरती देखने के बाद पुन: उद्यान में लौट जाते।

उनके मुख से अमेरिका में स्वामीजी की असाधारण सफलता और वहाँ उनके अभूतपूर्व स्वागत-सत्कार की बातें सुनकर हम लोगों को असीम आनन्द हुआ करता था। टर्नबुल साहब के मुख से हम लोगों ने सुना था कि किसी-किसी दिन व्याख्यान के अन्त में, स्वामीजी से हाथ मिलाने की आशा के साथ सैकड़ों नर-नारी अधीर आग्रहपूर्वक प्रतीक्षा करते रहते थे। स्वामीजी को एक बार स्पर्श करने के लिये

ऐसी धक्का-मुक्की शुरू हो जाती कि अनेक महिलाओं के कपड़े तक फट जाते। विभिन्न सम्प्रदायों के मिशनरियों के प्रबल आक्रमण तथा मिथ्या आरोपों के समय, जिस प्रकार स्वामीजी – निर्विकार प्रशान्त चित्त के साथ, प्रबल युक्तियों के बल पर उनके सन्देह दूर करते हुए उन्हें निरुत्तर कर देते, उसे देख सभी लोग अत्यन्त विस्मित हो जाते। विरोधियों की विभिन्न प्रकार की बातें सुनकर भी कभी उनका धैर्य नहीं छूटा। वे हँसते हुए सबकी बातें सुनकर उनका समुचित उत्तर दिया करते थे।

हम लोग दिन-पर-दिन उनसे स्वामीजी के विषय में अनेक विस्मयकर बातें सुना करते थे। उनके मुख से अमेरिका की अनेक मजेदार कहानियाँ सुनकर भी हमें विशेष आनन्द हुआ करता था। अब वे सारी कहानियाँ याद नहीं हैं। टर्नबुल द्वारा एक दिन सुनाई गई एक मजेदार कहानी बताता हूँ।

दो अमेरिकी सज्जन – अपने एक धनाढ्य (अंग्रेज) मित्र के बुलावे पर, घूमने के लिये लन्दन आये। मित्र उन्हें – सबसे पहले लन्दन का 'संसद-भवन' दिखाने ले गये। उसे देखकर वे लोग बोले, "ओह, हमारे वाशिंग्टन का कांग्रेस-हाउस तो इससे भी काफी बड़ा और सुन्दर है।" सेंट पॉल के गिर्जाघर को देखकर वे लोग बोल उठे, "यह तो हमारे देश के गिरजाघरों की बराबरी ही नहीं कर सकता।" इसी प्रकार वे लोग लन्दन में जहाँ कहीं भी जाते और जो कुछ भी देखते, वे दोनों कहीं भी अमेरिका की बड़ाई करते नहीं थकते। इसके बाद लन्दन के वे सज्जन उन लोगों को इटली घुमाने ले गये।

इटली जाने के बाद, एक रात जब वे अमेरिकन सुमधुर सुरापान करके मदहोश पड़े हुए थे, उनको उसी हालत में अँग्रेज ने उन्हें खाटों पर लिटाकर, एक कब्रिस्तान में ले जाकर रखवा दिया और होश में आने के बाद वे लोग क्या करते हैं, यह देखने के लिये उनसे थोड़ी दूरी पर जाकर बैठ गया। एक टिमटिमाते दीपक के प्रकाश में कब्रिस्तान की निर्जनता और भी अधिक घनीभूत लग रही थी। होश में आते ही दोनों अपनी आँखें मलते हुए चारों ओर देखकर उच्च स्वर में बोल उठे, "Here is the day of judgement! Hurrah for the Stars and Stripes! America is the first to wake up!" अर्थात् "महान्याय का दिन आ पहुँचा है! अमेरिका की राष्ट्रीय पताका की जय हो! अमेरिका ही सर्वप्रथम जाग्रत हुआ।"

सब कुछ देख-सुनकर लन्दनवासी ने आखिरकार हार स्वीकार कर ली।

एक बंगाली धर्म-प्रचारक ने, शिकागो की धर्म-महासभा से लौटने के बाद, ईर्ष्या-द्वेष से वशीभूत होकर – बम्बई से ही स्वामीजी के विषय में झूठी बातों का प्रचार करना शुरू कर दिया। फिर, कलकत्ते पहुँचकर भी वे स्वामीजी की महिमा को धूमिल करने की चेष्टा में लग गये। ठीक तभी डॉ. टर्नबुल हमारे मठ में आये। उनके मन में बंगाल के अन्न-व्यंजनों का रसास्वादन करने की इच्छा थी। एक दिन हम लोग उन्हें एक भक्त के घर में भोजन करा लाये। एक अन्य दिन, ठाकुर के परम भक्त सिमला मुहल्ले के सुरेश बाबू का निमंत्रण पाकर, रात के समय मैं उन्हें उनके घर ले गया। वहाँ हेयर स्कूल के हेड-मास्टर श्रीयुत भोलानाथ पाल आये हुए थे। उन्होंने तथा सुरेश बाबू के घर आये सभी लोगों ने उनके मुख से स्वामीजी की महिमा सुनी और उनसे इस विषय पर कुछ व्याख्यान देने का अनुरोध किया। तदुपरान्त टर्नबुल साहब ने कलकत्ते के विभिन्न स्थानों तथा एड़ियादह में स्वामीजी की अलौकिक प्रतिभा और अमेरिका में उनके मान-सम्मान तथा अद्भुत प्रभाव की बातों का प्रचार करके ईर्ष्या-द्वेष से ग्रस्त उन धर्म-प्रचारक के मिथ्या विद्वेषपूर्ण बातों का समुचित रूप से उत्तर दिया था।

टर्नबुल एक ज्योतिषी भी थे। ठाकुर की जन्मपत्री देखकर उन्होंने कहा था, "वे जीवों के उद्धारक थे और जीवों का अज्ञान-अन्धकार दूर करके जगत् को ज्ञानालोक से उद्भासित करने आये थे – 'Saviour and Light-bearer.' उनके मुख से ठाकुर की जन्मपत्री का यह फल सुनकर हम लोगों को अपार आनन्द हुआ था।

बाद में काशीपुर में स्थित गोपाललाल शील के उद्यान में मदर सेवियर, उनके दोनों तरफ कुछ गुरुभाई तथा आलासिंगा, जी.जी आदि कुछ भक्तों को कुर्सियों में बैठाकर और स्वामीजी ने स्वयं मदर सेवियर के पीछे खड़े होकर एक फोटो निकलवाया था। उसमें खड़े हुए डॉ. टर्नबुल का भी चित्र है।

स्वामीजी के भारत लौटने के कुछ माह बाद टर्नबुल ने अमेरिका जाकर शिकागो नगर से 'थ्रेसहोल्ड लैम्प' (Threshold Lamp) नाम से एक मासिक पत्रिका का सम्पादन आरम्भ किया। बाद में, उस मासिक की कुछ प्रतियाँ मुझे सारगाछी में प्राप्त हुई थीं। **(क्रमशः)**

हमारा पौराणिक साहित्य

डॉ. सुरेशचन्द्र शर्मा, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)

पुराणों की उत्पत्ति – वैदिक काल में वेदों के संहिता भाग में यद्यपि इन्द्र, मित्र, वरुण आदि की स्तुतियाँ की गई हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि उस समय यह अवधारणा स्पष्ट थी कि ये सभी देवता एक ही सत्य की अभिव्यक्तियाँ हैं। ऋग्वेद की वाणी है -'**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**' (१.१६४.४६) अर्थात् सत्य एक है, सत्यद्रष्ट उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं।

वेदों के ब्राह्मण और संहिता भाग के मध्यान्तर काल में पुराणों की उत्पत्ति मानी जाती है। यज्ञों एवं विभिन्न देवों के स्तुति गायन काल के बीच के समय में ऋषि-परम्परा, राजाओं की वंशावली तथा कुछ घटनाओं की चर्चा की जाती थी। उसी चर्चा में से पुराणों की उत्पत्ति मानी जाती है। 'पुराण' शब्द का शाब्दिक अर्थ है – 'प्राचीनकाल की वार्तायें' जो संहिता काल में हुआ करती थीं। यद्यपि 'पुराण साहित्य' का वर्तमान स्वरूप ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी बताया जाता है, परन्तु बीज रूप में यह उतना ही प्राचीन है जितना कि वेदों का संहिता भाग। पुराण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अथर्ववेद (११.७.२४) में पाया जाता है, जहाँ पर कहा गया है कि इनकी व्युत्पत्ति मन्त्र, स्तुति, छन्द, भावार्थ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण एवं बृहदारण्यकोपनिषद के साथ यज्ञों के उच्छिष्ट भाग के रूप में हुई थी। यहीं पर 'पुराण' को परमात्मा का निवास भी माना गया है। इन सभी स्थानों पर 'पुराण' शब्द का एक वचन के रूप में प्रयोग किया गया है। इसके आधार पर अनुमान लगाया गया है कि पुराण वैदिक ज्ञान का ही अंग था, न कि वेदों से पृथक् विचारधारा जैसाकि परवर्तीकाल में मान लिया गया था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि पुराणों का उदय यज्ञकार्य के मध्यान्तर काल में विशेषकर राजर्षियों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले 'अश्वमेध' एवं 'राजसूय' यज्ञ के समय वर्णित आख्यानों के रूप में हुआ था, जिसमें राजा-महाराजाओं की वंश-परम्पराओं की चर्चा की जाती थी। अत: वेदों के 'आख्यान' भाग को पुराणों का मूल स्रोत माना जाता है। तत्पश्चात् यह वेदों के ब्राह्मण एवं संहिता भाग से पृथक् कर दिया गया। इसका कारण सम्भवत: यह था कि यह प्रमुख रूप से सूत वंश के हाथों में पहुँच गया, जो एक मिश्रित जाति थी। इसका संकेत हमें इस तथ्य से भी प्राप्त होता है कि वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण तथा विष्णु पुराण की रचना करने के बाद व्यास देव ने इसे अपने शिष्य लोमहर्षण को दे दिया था और फिर लोमहर्षण ने अपने शिष्यों को प्रदान कर दिया। इस प्रकार सूत लोमहर्षण पुराण साहित्य के प्रमुख वक्ता व प्रचारक कहे गये।

इसके आधार पर हमें एक अन्य सूत्र भी प्राप्त होता है कि वैदिक कर्मकाण्ड काल में भी कोई एक प्रमुख पुराण रहा है, जो वेदव्यास का सर्जन था, जिसे बाद में उन्होंने सूत जाति को हस्तान्तरित कर दिया। इस प्रकार पुराण वेदों का अभिन्न अंग होते हुए अपने प्रसार हेतु विभिन्न उपासना पद्धतियों, सन्तों, महात्माओं तथा विविध प्रकार की वैज्ञानिक, रहस्यवाद, सामाजिक तथा ऐतिहासिक सामग्री से युक्त एक मिश्रित साहित्य हो गया।

महापुराण एवं उपपुराण – इस प्रकार पुराणों को दो भागों में विभाजित कर दिया गया – महापुराण एवं उपपुराण। महापुराणों की संख्या अठारह मानी जाती है, जो इस प्रकार है - ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, वराह, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ एवं ब्रह्माण्ड पुराण। इस क्रम का यह अभिप्राय नहीं कि इनमें कोई विरोध है अथवा श्रेष्ठ-कनिष्ठ का भाव है। इसके अतिरिक्त जो उपपुराण है वे भी सर्व-सम्मति से महापुराणों के उपभेद या परिपूरक के रूप में जाने जाते हैं।

मार्कण्डेय पुराण को छोड़कर सभी पुराण साम्प्रदायिक स्वभाव के हैं, जिनमें किसी एक 'देव' को ही सर्वोपरि बतलाया गया है। इस दृष्टि से शिव, शक्ति, विष्णु आदि देवों का प्राधान्य स्वीकार किया गया है और तदनुसार उनके नामकरण भी किये गये हैं। इस कारण जो भारतीय वैदिक संस्कृति से भलीभाँति परिचित नही हैं, उन व्याख्याकारों ने पुराणों से इस साम्प्रदायिक दृष्टि को संकीर्णता का रूप दे दिया है। पुराणों का उद्देश्य किसी देव-विशेष को महिमामण्डित करने के पीछे अन्य देवों को नीचा दिखाना नहीं, अपितु विशिष्ट उपासक की निष्ठा को किसी एक देव में दृढ़ करना है। सभी पुराणों की पृष्ठभूमि में वैदिक संस्कृति का वही उदार दृष्टिकोण विद्यमान है, जिसे ऋग्वेद में 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (१.१६४.४६) के द्वारा

घोषित किया गया है। सत्य एक है, जिसे ऋषिगण भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। यह साम्प्रदायिक संकीर्णता नहीं, अपितु सांस्कृतिक उदारता है, जो सम्पूर्ण जगत को एक परिवार . के रूप में देखने को प्रेरित करती है। किसी देवविशेष को सर्वोपरि रखने के पीछे पुराणविशेष का उद्देश्य भक्त की उस देवविशेष में निष्ठा को पुष्ट और दृढ़ करना है, अन्य किसी देव-विशेष के प्रति विद्वेष उत्पन्न करना नहीं। पुराणों की विशेषतायें प्रारम्भ में पाँच मानी गई थी, जो इस प्रकार है – सर्ग, विसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित।

पौराणिक शैली और आधुनिक मानसिकता – भागवत की रचना जिस काल में हुई थी, उसकी तुलना में आज की मानसिकता में बहुत अन्तर है। आज मनुष्य, प्रकृति एवं विश्व-ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं आविष्कारों के कारण हमारी सोच में असाधारण परिवर्तन आया है। इतिहास, भूगोल, खगोल आदि की वर्णन-शैली के सम्बन्ध में जो पौराणिक दृष्टिकोण है, वह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मेल नहीं खाता। पुराणों के रचना-काल में यह समस्या नहीं थी, परन्तु आज एक शिक्षित वर्ग भागवत-वर्णित मनुष्यों की आयु, उनके चमत्कारी कार्यों, नरकों का वर्णन, पृथ्वी के राजाओं का स्वर्ग में सदेह जाना और इन्द्र एवं राक्षसों से युद्ध करना, दूध और दही के समुद्रों के वर्णन को पढ़कर भौचक्का रह जाता है। आज की बिग बैंग थ्योरी, थ्योरी आफ इवोल्यूशन तथा शरीर की जड़वादी व्याख्याओं में जहाँ चेतना के लिए कोई स्थान ही नहीं है, वहीं लोक-परलोक आदि के अतिरंजित वर्णन के कारण पुराण साहित्य को पढ़ने में मनुष्य की बुद्धि को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

आधुनिक मान्यता के अनुसार पृथ्वी की आयु २ अरब वर्ष है और उस पर जीवन का प्रादुर्भाव १ अरब वर्ष पूर्व हुआ था एवं तद्नुसार पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति १ अरब वर्ष पूर्व मानी गई है। विकास की लम्बी प्रक्रिया द्वारा मनुष्य जाति का अस्तित्व १० लाख वर्ष पूर्व हुआ होगा। परन्तु मनुष्य के सामाजिक जीवन के प्राप्त प्रमाण केवल ३० हजार वर्ष पूर्व के हैं तथा हमारी वर्तमान सभ्यता केवल ६ हजार वर्ष पुरानी मानी गई है। पाषाण, अस्थियों, धातुनिर्मित वस्तुओं, वर्तुलों, नक्काशी, चट्टानों तथा खनिजों की आयु के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि मानव सभ्यता ने अनेक अवस्थाओं को पार किया होगा। मानव-जीवन का व्यक्तिगत तथा सामूहिक लक्ष्य क्या है, इसके सम्बन्ध में विज्ञान का कोई स्पष्ट मत नहीं है। आधुनिक विज्ञान जीवन का कोई अन्तिम लक्ष्य नहीं मानता तथा चेतना जैसी वस्तु को भौतिक विकास का एक उपउत्पाद मानता है, जो कुछ समय बाद नष्ट हो जाती है। जीवन और जगत के अन्तिम सत्य के सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान अनिश्चित एवं संशयवादी है।

मनुष्य यदि विज्ञान के तथाकथित प्रयोगवाद, इसकी सीमाओं, कट्टरवादिता एवं हठधर्मिता को ही सत्य मानकर चलता है, तो पौराणिक दृष्टिकोण एक अवरोधक एवम् हास्यास्पद गाथा सिद्ध हो जाती है। परन्तु यह मान्यता पौराणिक दृष्टिकोण, पुराणों की देशकाल की गणना तथा उनकी प्रतीकात्मक भाषा-शैली को न समझ पाने के कारण एवं उसकी छोटी-मोटी त्रुटियों को बढ़ा-चढ़ा कर बतलाने के कारण है।

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विपरीत पुराणों के अनुसार जगत की उत्पत्ति सच्चिदानन्द ब्रह्म के संकल्प से हुई है तथा इसकी सृष्टि और विनाश चक्राकार गति से युगों-युगों से चलती आ रही है। इसका कोई आदि और अन्त नहीं है (२.२.१६-४१)। पुराणों के अनुसार मानव सभ्यता स्वायम्भुव मनु से प्रारम्भ होकर खरबों वर्ष पुरानी है। इसका एक और कारण यह है कि पौराणिक दृष्टिकोण आधुनिक विज्ञान की तुलना में अधिक व्यापक है तथा आधुनिक वैज्ञानिक विकासवाद (क्रम विकास) के स्थान पर क्रम ह्रास के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है।

कुछ आधुनिक इतिहासविद् एवं पुरातत्त्ववेत्ता भी आधुनिक वैज्ञानिक मानसिकता तथा उसकी विधियों को अमान्य कर रहे हैं तथा पुराणों के विश्व-ब्रह्माण्डीय उत्पत्ति की कल्प तथा युगीन पद्धति को स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं। आज ऐसे इतिहासविदों पुरातत्त्ववेत्ताओं, भौतिकविदों, जीव वैज्ञानिकों एवम् विकासवादियों को आह्वान किया जाता है कि वे खगोल, भूगोल, कालगणना तथा देशकाल की अवधारणाओं को खुले मन से अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनाते हुए देखें कि पौराणिक साहित्य इन गुत्थियों के समाधान में हमारी क्या और कहाँ तक सहायता कर सकता है। इस सम्बन्ध में इन्टर इण्डिया पब्लिकेशन १०५ (१९७९) आनन्द नगर, न्यू दिल्ली से अभी हाल में प्रकाशित (हिस्ट्री ऑफ प्री इंडिया, लेखक - आर. सिद्धार्थ शर्मा) द्वारा एक प्रयास किया गया है। हिन्दी भाषी क्षेत्र में अभी इस प्रकार की पहल कदाचित् ही की गयी है। एच. जी. वेल्स जैसे इतिहासविद् ने अपनी पुस्तक आउट लाइन

ऑफ हिस्ट्री में पौराणिक साहित्य के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखा हैं - ''प्राचीन लोगों में युगों पूर्व अस्तित्व के सम्बन्ध में भारतीय दार्शनिक ही कुछ स्पष्ट ज्ञान रखते हुए प्रतीत होते हैं''।

आज के इतिहासविद् भी तो क्या यही भूल नहीं कर रहे हैं? – आधुनिक इतिहास का सरल रेखा सिद्धान्त मानव के निकट अतीत को समझाने में तो हमारी सहायता कर सकता है, किन्तु उसके सुदूर अतीत एवं दीर्घगामी भविष्य के सम्बन्ध में तथा मनुष्य के भावी महत्त्व एवम् उद्देश्य पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाल सकता। यहाँ इतिहास की पौराणिक अवधारणा मनुष्य के महत्त्व एवं उसकी भवितव्यता पर अच्छा प्रकाश डालती है, जिसके अनुसार वह आज की अवस्था से अपना विकास करते हुए अधिकाधिक पूर्ण आध्यात्मिक परिपूर्णता की ओर अग्रसर हो सकता है। भौतिक दृष्टि से मनुष्य स्वयं जड़पिण्ड से उठकर भागवत चैतन्य में उन्मीलित होते हुए एक श्रेष्ठ प्राणी के रूप में विकसित हो सकता है। जहाँ जड़वादी मानसिकता के कारण आज सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार दिखलाई देता है, वहाँ पुराण संहिता और उसमें भी अध्यात्म-दीप श्रीमद्भागवत (१.२.३) हमारी सहायता कर सकता है। भागवत का उद्देश्य ही मनुष्य की बुद्धि में तत्त्व-जिज्ञासा जगाना है, न कि केवल जीवन-निर्वाह करना तथा केवल इन्द्रियों को तृप्त करना (१.२.१०) है, जैसाकि आधुनिक जड़वादी मानसिकता से युक्त आज का साहित्य कर रहा है। यद्यपि स्वयं भौतिक विज्ञान का यह निष्कर्ष नहीं है, परन्तु अधकचरी बुद्धि से तथा संकीर्ण मन से किया गया अध्ययन इसके लिए उत्तरदायी है।

हाँ, यह कार्य तभी किया जा सकता है, जबकि सनातन धर्मावलम्बी दो बड़े खतरों से स्वयं को बचा सकें। इस कार्य में सबसे बड़े दो खतरे हैं, जैसाकि स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – धर्म के नाम पर हमारे स्वयं के कुसंस्कार तथा दूसरा आधुनिक जड़वाद की स्वेच्छाचारिता। इन दोनों से हमें बचना है। खुले मन से हमें आधुनिक वैज्ञानिक विचारधारा तथा पौराणिक विचारधारा का अध्ययन कर उन दोनों के सकारात्मक पक्षों को ही ग्रहण करना है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – 'हे भारत! इससे और बड़ी भूल क्या हो सकती है कि तेरे ऊपर पश्चिम का अन्धानुकरण का भूत इस प्रकार बैठा हुआ है कि तुम यह सोचने में समर्थ नहीं हो कि हमारे लिए क्या उचित है तथा क्या अनुचित। जो कुछ पश्चिम कहता है, वह अच्छा और जो कुछ भारत कहता है, वह बुरा है'। **(क्रमशः)**

('सर्वत्र' से प्रकाशित 'भागवत का शाश्वत संदेश' से साभार)

पृष्ठ ४१५ का शेष भाग

जीवन के उस क्षण में जब वे आध्यात्मिक भाव से ओतप्रोत हो चुके थे, उस समय उनके पिता का देहावसान हो जाता है। जिससे परिवार का दायित्व उनके कन्धों पर आ जाता है। वहीं दूसरी ओर उनका मन आदर्शमय जीवन की ओर अग्रसर होने के लिए तत्पर रहता है। वह व्यक्ति जिसे एक बार पढ़ लेने पर पूरी पुस्तक कण्ठस्थ हो जाती थी, उस व्यक्ति को कोलकाता में नौकरी नहीं मिलती। वे दर-दर भटकते रहे। कितने ही दिन बिना भोजन के बिताया। पर किसी भी प्रकार इस सांसारिक माया को काटकर गुरु के आदेश का पालन करने लगे और संन्यासी संघ की स्थापना की। पर वहाँ भी खाने को न जुटता, भिक्षा भी नहीं मिलती, परन्तु उन्होंने हार न मानी और संघर्ष जारी रखा। भिक्षा करते हुए राष्ट्र-भ्रमण किया। अवसर पाकर अमेरिका की धरती पर जा पहुँचे, जहाँ उन्हें कोई नहीं पहचानता था। अब तो एक-एक पल संघर्ष के साथ ही बिताना था। धन नहीं, वस्त्र नहीं, परिचय नहीं और तो और लोग उनके पीछे लगने लगे। पर इन्हीं संघर्षों के बीच उन्होंने अपनी पहचान बनाई। शिकागो की धर्म महासभा में अद्वितीय भाषण के माध्यम से वे विश्व विजयी स्वामी विवेकानन्द बन गए। इसके बाद भी उनका संघर्ष समाप्त नहीं हुआ। अब उनके प्रतिद्वंदी उनके पीछे लग गए। ईसाइयों ने विभिन्न प्रकार से उन पर दोषारोपण किए। परन्तु सोना तो जलकर और निखरता है, वैसे ही स्वामीजी और भी लोकप्रिय होने लगे। उन्होंने अपनी अमृतवाणी सुनाकर पूरे विश्व को जागृत किया। अपनी अल्प आयु में एक बड़ा संघर्षमय और सफल जीवन जीकर उन्होंने एक आदर्श स्थापित किया। किसी सफलता के पीछे एक संघर्षमय जीवन छिपा होता है। हमें ऐसे जीवन को नमन करना चाहिए और उनके संघर्ष से प्रेरणा लेनी चाहिए। ○○○

सन्दर्भ – १. विवेकानन्द साहित्य २/३७१, **२.** वही ३/१, **३.** अमृतवाणी ५६८, **४.** वि. सा. ३/३३३, **५.** अमृतवाणी ३७५.

साधुओं के पावन प्रसंग (२१)

स्वामी भूतेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

महाराज सेंट लुइस वेदान्त सोसाइटी की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में १३ सितम्बर, १९८८ को नित्यमुक्तानन्द के साथ सेंट लुइस आये थे और १९ तारीख को शिकागो चले गये। १४ सितम्बर, १९८८ को हमलोग महाराज को बेसिलिका (कैथोलिक कॉथेड्रोल) दिखाने ले गये। इस प्रकार का मोजेइक का कार्य सम्पूर्ण विश्व में कहीं और पर किया गया है, इसमें सन्देह है। Father Vincent Hier ने महाराज की अभ्यर्थना की और अन्दर के सभी दर्शनीय स्थानों को दिखाया। तत्पश्चात् हमने महाराज को मिसीसिपी नदी के पश्चिम तीर पर स्थित मेहराब (Gateway of the West) दिखलाया। यहीं से California gold rush अभियान का आरम्भ हुआ था। उसके बाद नदी पार करके हम लोग मिसीसिपी एवं मिसोरी नदी के संगम स्थल गये। वहाँ पर मैं नदी में उतरा और अंजली भरकर जल लाकर महाराज को दिया। महाराज ने उसे अपने मस्तक पर छिड़क लिया।

१५ सितम्बर को महाराज ने सन्ध्या-समय श्रीश्रीमाँ एवं स्वामी ब्रह्मानन्द जी की स्मृतियों पर व्याख्यान दिया। १६ सितम्बर को बाबूराम महाराज, लाटू महाराज एवं हरि महाराज के विषय में तथा १७ सितम्बर को महापुरुष महाराज की स्मृतियों के बारे में बताया। १८ सितम्बर को प्रात: 'वेदान्त क्या है?' इस विषय पर महाराज ने एक सुन्दर व्याख्यान दिया। उनके सभी व्याख्यानों को हम लोगों ने विडियो टेप करके रख लिया था। बाद में, एक दिन मैंने महाराज से परिहास करते हुए कहा, "अभी, हम लोग आपको विक्रय करके रुपया कमा रहे हैं।" उन्होंने पूछा, "किस प्रकार से?" मैंने कहा, "कई लोग आपका टेप खरीद रहे हैं।" वे मुस्कुरा दिए।

नाश्ता के समय हम लोग नौ-दस प्रकार के फल सजा दिया करते थे। भक्तगण विविध प्रकार के व्यंजन तैयार करके लाते थे। महाराज मीठा-दही बहुत पसन्द करते थे। एक दिन मैंने दूध को उबालकर गाढ़ा किया, उसमें चीनी मिलाया और दही में से कुछ दही अलग निकालकर जोरण देकर दही बैठा दिया। दूसरे दिन दही नहीं जमा। क्योंकि वह जोरण अधिक खट्टा नहीं था। उसके बाद, चूल्हा चालू करके उस पर दही को रखा, उसमें से तीन भाग में से एक भाग दही जम गया। महाराज से मैंने कहा, "मेरा दही भूगोल हो गया है – अर्थात् पृथ्वी का एक भाग स्थल और दो भाग जल। दही नहीं जमा।" उन्होंने कहा, "जो जमा है, वही ले आओ।" मेरे जमाये हुये दही को खाकर उन्होंने कहा, "अच्छा हुआ है। बहुत स्वादिष्ट है।" उनको देखने से लगता, 'सन्तुष्ट: सततं योगी'। अगले दिन एक बंगाली भक्त अच्छा मीठा दही लेकर आये थे।

१७ सितम्बर को मैंने महाराज से कहा, आज आपको 'ग्रेटेस्ट शो ऑन अर्थ' दिखाऊँगा। Ringling Bros. and Burnum & Bailey circus – तीन रिंग का सबसे प्रसिद्ध सकर्स है। हमारे सेक्रेटरी सबसे महँगा चार टिकट खरीद कर ले आये हैं। महाराज के साथ स्वामी नित्यमुक्तानन्द, ब्रह्मचारी नील और मैं एरिना गये। आधा सकर्स देखने के बाद महाराज ने कहा, "चलो, अब आश्रम चलते है।" उन्होंने पूरा सर्कस क्यों नहीं देखा, इसका कारण मुझे नहीं बताया। मेरे मन में ऐसा विचार आया कि ट्रैपीज (कलाबाजी का झूला) पर लड़कियों का कम कपड़े पहनकर सर्कस दिखाना सम्भवत: महाराज को पसन्द नहीं आया होगा।

डॉ. जितेन गुप्त ने महाराज का बहुत अच्छी तरह से परीक्षण किया और इसके साथ महाराज का इकोकार्डियोग्राम भी किया गया। क्योंकि वे लगातार भ्रमण कर रहे थे। बाद में हमलोग महाराज को दवाई भेजा करते थे। महाराज ने एक दिन वार्तालाप करते हुए कहा, "सुनो, विधानचन्द्र राय कहते थे, 'अस्वस्थ होने पर डॉक्टर को बुलाइयेगा, क्योंकि उनको भी तो जीवित रहना है। वे लोग जो दवाई लिखेंगे, वे खरीदियेगा, क्योंकि दवाई-कम्पनियों को भी तो जीवित रहना है तथा कृपा करके आप ये सब दवाइयाँ

नहीं खाइयेगा, क्योंकि आपको भी तो जीवित रहना है।'' महाराज बहुत रसिक थे।

इसके पश्चात् १९९० ई. के जुलाई महीने में मैं भारत गया। महाराज उस समय रामकृष्ण मठ-मिशन के महाध्यक्ष थे। प्राय: सुबह-शाम दोनों समय उनके साथ विभिन्न विषयों पर वार्तालाप होता था। जुलाई महीने के अन्तिम दिनों में मैं सारगाछी गया। ३१ जुलाई की रात्रि में सारगाछी आश्रम में डकैती हुई। डकैत आश्रम का १५-२० हजार रुपया, मेरा १००० रुपया, मेरी हाथघड़ी और मेरी एक यात्रा-घड़ी लेकर चले गये। ९ अगस्त को सन्ध्या के बाद बेलूड़ मठ में जाने पर जब मैं महाराज के पास गया, तो महाराज बिस्तर छोड़कर उठकर बैठ गये। सव्यसाची (स्वामी तद्भावानन्द) उस समय महाराज का पैर दबा रहा था। उन्होंने सेवक को अपनी घड़ी आदि लाने के लिए कहा। विभिन्न देशों के भक्तों ने यह सब महाराज को उपहार में दिया था। उन्होंने उसमें से एक अच्छी घड़ी (Seiko) चुनकर अपने हाथों से मेरे कलाई पर बाँध दिया और स्वामी नित्यमुक्तानन्द को एक छायाचित्र लेने को कहा। वह छायाचित्र आज भी मेरे पास है।

मैंने कई साधु तथा विद्वानों को देखा है, किन्तु इस प्रकार के असाधारण स्मृतिसम्पन्न व्यक्ति को कभी नहीं देखा। अँग्रेजी, बँगला, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती एवं अन्यान्य भाषाओं में वे जिस प्रकार पारदर्शी थे, उसी प्रकार प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन पर भी उनका अधिकार था। इसके बावजूद भी उनमें जानने की अपरिमित अभिलाषा थी। अभी कई लोगों में 'ज्ञापयितुमिच्छा' (दूसरों को जनाने की इच्छा) है, किन्तु 'ज्ञातुमिच्छा' (स्वयं को जानने की इच्छा) नहीं देखता हूँ। एक दिन भाषा-तत्त्व को लेकर विचार-विमर्श हुआ। महाराज ने कहा, ''भाषा-तत्त्व के अनुसार एक-ही शब्द का स्वर के अनुसार अनेक अर्थ हो सकता है। जैसे – (१) लड़का विद्यालय जायेगा। माँ को कह रहा है, 'माँ, मैं विद्यालय जा रहा हूँ।' माँ ने कहा, 'जाओ।' इस समय मधुर स्वर है। अनुमति देना हुआ।, (२) हो सकता है कि घर में कोई दुष्ट व्यक्ति घुस गया हो। वही स्त्री चित्कार करती हुई बोली, 'जाओ।' इस समय 'जाओ' का अर्थ रुष्ट स्वर है।, (३) उसी प्रकार कोई प्रेमिका अपने प्रेमास्पद को ठेलते हुए कहती है, 'जाओ'। यहाँ पर 'जाओ' का अर्थ don't go (मत जाओ) है।'' महाराज ऐसे व्यंग्य करते हुए बातें कह रहे थे कि मैं हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया।

एक अन्य दिन मैंने वार्तालाप के बीच में कहा, ''हच्छे।'' (हो रहा है।) उन्होंने कहा, '' 'हच्छे' क्या, बोलो होच्छे।' (हो रहा है।)'' ''महाराज, आप तो जानते हैं कि मैं बाँगाल (बँगलादेशी) हूँ। '' ''हाँ, हाँ, जानता हूँ। घर कहाँ पर है? खूलना (बँगलादेश का एक स्थान)। स्नान और भोजन करने में ही समय बीत गया, सोने के लिए समय ही नहीं मिला।'' मैं अचम्भित होकर अपने गाँव की भाषा सुनता रहा।

एक दिन बेलूड़ मठ में उनके साथ घूमते-घूमते गंगा की तरंगें, वराहनगर घाट पर वृक्षों एवं खुला नीला आकाश देखकर मैंने कालिदास के रघुवंश में से एक श्लोक कहा। उसमें 'दुरादर्श्व' का गलत उच्चारण होने पर महाराज ने तत्क्षण मुझसे कहा, 'तुमने गलत कहा है।' उसके बाद उन्होंने पूरा श्लोक कहा –

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलंकरेखा।।

(१३ सर्ग, श्लोक १५)

मैं आश्चर्यचकित हो गया। उन्होंने कितने दिन पूर्व पढ़ा होगा, अभी भी सब स्मरण है। हम लोग बार-बार पढ़ने के बाद भी शास्त्रों के सभी श्लोक स्मरण नहीं रख पाते हैं। गीता, उपनिषद, भागवत जैसे शास्त्र एवं भाष्य महाराज की वाणी से वार्तालाप करते समय फूलझड़ी जैसे निकलते रहते थे। महाराज के उच्चारण में कोई त्रुटी या जड़ता नहीं थी। मैंने उनके कमरे में न तो बहुत अधिक पुस्तकें देखीं और न ही उनको हमारी तरह अधिक पढ़ते-लिखते ही देखा है। एक दिन मैंने उनसे कहा, ''मुझे व्याख्यान तैयार करने में कितना समय लगता है! परन्तु आप बिना तैयारी और संक्षिप्त नोट के कितना अच्छा व्याख्यान देते हैं। इसके साथ ही आपके विचार भी कितने सुव्यवस्थित रहते हैं!'' प्रतिदिन उनके सेवकगण उनके सामने भागवत तथा ठाकुर-स्वामीजी की पुस्तकों का पाठ करते थे। वे आँखें बन्द करके सुनते रहते। मठ में रहने पर, मैं अपराह्न ३.३० बजे चाय पीने के समय उनके पास जाकर पाठ सुनता तथा उनके साथ वार्तालाप करता था।

मठ से मेरे अमेरिका वापस जाने के समय महाराज, शिखरेश को मुझे जितनी धोती, चादर, कमीज के कपड़े की आवश्यकता हो, उनके भण्डार से देने के लिए कहते। इस देश (अमेरिका) में बाहर जाने के समय मैं पाश्चात्य-वस्त्र,

किन्तु आश्रम के भीतर गेरुआ-वस्त्र पहनता हूँ। मैं रुपया खर्च करके कपड़ा-चादर न खरीदूँ, इस पर वे दृष्टि रखते थे। पूजनीय गम्भीरानन्दजी महाराज भी मुझे वस्त्र देते और कहते थे, "सिल्क का कपड़ा उस देश में ले जाओ। इस देश में साधुओं के सिल्क कपड़ा पहनने पर लोग निन्दा और पीठ पीछे उसकी बुराई करते हैं।"

१ अगस्त, १९९० के दिन महाराज से विदाई लेने के लिए जाने पर उन्होंने कहा, "I can't say good-bye. Come again. May Thakur be with you. May Holy Mother be with you. May Swamiji be with you. (मैं अलविदा नहीं कह सकता। पुन: आना। ठाकुर-माँ-स्वामीजी तुम्हारे साथ रहें!"

११, १२, १८ एवं १९ सितम्बर, १९९३ को शिकागो धर्ममहासभा शताब्दी समारोह का आयोजन कोलकाता के नेताजी इन्डोर स्टेडियम में हुआ। विभिन्न देशों से बारह हजार श्रोता आये थे। ११ सितम्बर को भूतेशानन्दजी महाराज ने अपना लिखित व्याख्यान दिया। तत्पश्चात् मैंने उनसे पूछा, "महाराज, आपने लिखित व्याख्यान क्यों दिया? आपको लिखकर व्याख्यान देते हुए तो कभी नहीं देखा।" इसके उत्तर में उन्होंने कहा, "बाईपास सर्जरी के बाद मुझे कुछ-कुछ शारीरिक दुर्बलता का बोध हो रहा है। इसके अतिरिक्त, इतने लोगों के सामने आवश्यक विषय को व्यवस्थित करके निर्दिष्ट समय में पूरा करने के लिए मैंने लिखित व्याख्यान दिया।"

मठ में मैं जितने दिन था, प्रतिदिन सुबह उनके साथ घूमने जाता था। अन्यान्य संन्यासी भी साथ में रहते थे। तत्पश्चात् वे सभी को चॉकलेट देते और हास-परिहास करते थे। मठ के प्राणगोपाल महाराज बहुत भक्तिभाव से प्रणाम करके कुछ पाने के लिए अपने दोनों हाथ सामने कर देते। मैंने कहा, "देखिए महाराज, प्राणगोपाल महाराज की कितनी भक्ति है!" उन्होंने कहा, "वह शकुनि है, उसकी दृष्टि केवल चॉकलेट पर है।" महाराज आनन्दमय पुरुष थे। वे स्वयं हृदय खोलकर हँसते और दूसरों को भी हँसाते थे। यह हास्य-भाव ही उनको वृद्ध होने नहीं दिया था। ऐसा लगता कि वे सदा युवक ही हैं। **(क्रमशः)**

प्रेरक लघुकथा

इस जगत में श्रेष्ठ है नारी का जननी रूप

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

एक बार हजरत मुहम्मद साहब के पास एक व्यक्ति आया और उसने प्रश्न किया, "इस संसार में मेरे लिये सबसे अधिक प्रतिष्ठित कौन है? "हजरत ने तुरन्त उत्तर दिया – 'तेरी माँ।' 'उसके बाद कौन है?' दो बार पूछने पर उन्होंने दोनों बार 'माँ' को ही बताया। फिर से वही प्रश्न करने के बाद उन्होंने कहा – तेरे पिता। 'तो क्या माँ का स्थान पिता से तीन गुना अधिक होता है?' पूछने पर उन्होंने कहा, हाँ, जन्नत – स्वर्ग को माँ के कदमों के नीचे माना जाता है। इससे जान लो कि माँ का व्यक्तित्व कितना ऊँचा है। उन्होंने आगे कहा, माँ केवल जन्म ही नहीं देती, पालन भी करती है और जीने का सही ढंग भी सिखाती है। बड़ों का सम्मान करना, दूसरों के साथ कैसे व्यवहार करना, यह सिखाना भी वह अपना दायित्व समझती है। सन्तान की सेवा में सर्वाधिक समय देनेवाली माँ ही होती है। सन्तान के लिये अपना बलिदान देने में वह जरा भी संकोच नहीं करती। माँ के साथ दुर्व्यवहार करना अल्लाह की दृष्टि में सबसे बड़ा अपराध है।

सेवापरायणा नारी के कई रूप हैं – कन्या, बहन पत्नी, बहू, माँ आदि। इनमें माँ का स्थान सर्वोपरि है। एक अक्षर वाले 'माँ' शब्द में अपार स्नेह, ममता, वात्सल्य, करुणा, त्याग सेवा आदि भरा हुआ है। माँ का नारीत्व निर्विकार, निश्छल, नि:स्वार्थ रूप में निखर उठता है। जहाँ तैत्तिरीयोपनिषद (१.११.२) में माँ को 'मातृदेवो भव' कहकर देवता का स्थान दिया गया, वहाँ शास्त्रीय मतानुसार माता को हजार पिताओं से श्रेष्ठ बताया गया है। माँ इसीलिए वन्दनीय है, पूजनीय है। ○○○

पश्चिम बंगाल के राज्यपाल सम्माननीय **श्री जगदीप धनखर** जी ने १७ जून, २०२० को बेलूड़ मठ का परिदर्शन किया। मेघालय के राज्यपाल सम्माननीय **श्री तथागत राय** जी ने ८ जून, २०२० को रामकृष्ण मिशन, शिलांग में आनलाइन लर्निंग पोर्टल का उद्घाटन किया।

रामकृष्ण मिशन के चार महाविद्यालयों ने निम्नलिखित रैंक प्राप्त किया, जिसे एन.आई.आर.एफ, मानव विकास संसाधन मन्त्रालय, भारत सरकार ने ११ जून, २०२० को उद्घोषित किया है – १. रामकृष्ण मिशन विद्यामन्दिर, सारदापीठ ७वाँ, २. विवेकानन्द सेन्टेनरी कॉलेज, राहड़ा ११वाँ, ३. रेसीडेन्सीयल कॉलेज, नरेन्द्रपुर २०वाँ, ४. आर्ट और साइन्स कॉलेज, कोयम्बटुर ६५वाँ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के छात्रों ने छत्तीसगढ़ बोर्ड की १०वीं और १२वीं की परीक्षा में निम्नलिखित स्थान प्राप्त किया – १०वीं कक्षा में १५४ ने परीक्षा दी, जिसमें १२६ ने प्रथम स्थान, २४ ने द्वितीय स्थान, ४३ ने स्टार मार्क प्राप्त किया और १२वीं कक्षा में १३३ ने परीक्षा दी, जिसमें ७९ ने प्रथम स्थान, ५० ने द्वितीय स्थान और ८ ने स्टार मार्क प्राप्त किया।

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली ने १ अप्रैल से २९ जून, २०२० तक आदर्शोन्मुखी शिक्षा (वैल्यू एजुकेशन) पर ६३ ऑनलाइन कक्षाएँ आयोजित कीं, जिसमें भारत के विभिन्न स्थानों के सरकारी और गैरसरकारी स्कूलों के २८३४ शिक्षकों ने भाग लिया।

अन्तर्राष्ट्रीय आश्रमों की सूचनाएँ – रामकृष्ण मिशन, फीजी में २२ जून, २०२० को फीजी की हाई कमीशनर श्रीमती पद्मा जी ने आश्रम परिदर्शन किया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, ढाका स्कूल के १०वीं कक्षा के २३ छात्रों ने सेकेन्ड्री एन्ड हायर सेकेन्ड्री एजूकेशन बोर्ड, ढाका की परीक्षा में सम्मिलित हुए, जिसमें १ ने ए+, ११ ने ए, ९ ने ए-, १ ने बी और १ ने सी ग्रेड प्राप्त किया।

निसाग्रा साइक्लोन राहत-कार्य – रामकृष्ण मिशन, लिम्बडी, गुजरात ने ९ से १२ जून, २०२० तक लिम्बडी में २४५ परिवारों को २४५ तारपोलीन वितरित किए।

अम्फान राहत-कार्य – २० मई, २०२० को पश्चिम बंगाल में विनाशकारी अम्फान साइक्लोन आया, जिससे पश्चिम बंगाल और बंगलादेश के कुछ भागों में बहुत क्षति पहुँचायी। रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों ने राहत-कार्य किए – **रामकृष्ण मठ, बागबाजार** ने २१ मई से १२ जून,२०२० तक पाँच हजार परिवारों को तारपोलीन ३६९१, चावल १०५०० किलो, दाल २५००, आलू ७,५००, तेल १०००, मूरी २०००, चीउड़ा १७५०, ... दूध २७६७ किलो, बिस्कुट ३०००पै., फेसमास्क १००० वितरित किये। **रामकृष्ण मठ, बलराम मन्दिर** ने २७ मई से १४ जून तक ५०० परिवारों में चावल १००० किलो, आटा १०२० किलो, दाल २६० किलो, सोयाबीन २४० किलो, नमक ५०० किलो, तेल २५० लीटर, दूध २७६७, बिस्कुट ४०० पैकेट, साबून ४०० पैकेट और सर्फ १०० किलो और ३००० लोगों को खिचड़ी वितरित किया। **रामकृष्ण मिशन आश्रम, वाराहनगर** ने २६ मई से ११ जून तक ६६४४ परिवारों को २४१६५ प्लेट खिचड़ी वितरित किया।

श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द सेवा आश्रम, अम्बिकापुर ने कोरोना राहत-कार्य किया। इसमें नगर के लेबर कालोनी में २७० परिवारों को भोजन-सामग्री प्रदान की गई, जिसमें ६५०००/- रुपये व्यय हुए। **रामकृष्ण विवेकानन्द सेवा समिति, राजनाँदगाँव** के द्वारा संजय परिहार जी के संरक्षण में ४ मई से २७ जून, २०२० तक कुल १५ लाख ५२ हजार, अन्ठानवे रुपये का कोरोना राहत कार्य किया। इसमें प्रवासी मजदूरों को २४,६२४ पैकेट भोजन, १३,३३० पैकेट नाश्ता वितरित किया गया, जिसमें १३,१७,१३९ रुपये व्यय हुए और अन्य राज्यों से आगत प्रवासियों को उनके गाँव पहुँचाने हेतु २,३४,९५९ रुपये के डिजल-पेट्रोल में व्यय हुए।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा कोरोना वायरस-त्रासदी राहत-कार्य किया गया।